नरक दर नरक

'यही कि अगर एक रोटी हुई, तो आधी-आधी,
खायेंगे। न हुई तो तुम्हें छाती से सटाकर सो जायेंगे !'
ऐसा कहा था जगन ने
और उषा जड़ों तक हिल गई थी।
लिफ्ट में उषा और जगन पहली बार
एक दूसरे को जाने थे।
मात्र एक चुम्बन ने दोनों के जीवन के अकेलेपन को
दूर कर दिया था
और फिर शुरू हुआ था संग-साथ का एक भरपूर सिलसिला
दो समानान्तर बुद्धिजीवी प्रेमी-प्रेमिका,
जब पति-पत्नी बन जाते हैं, तो कारण-अकारण,
समय-असमय तनाव-तकरार की स्थितियां उत्पन्न
होती रहती हैं; पर एक दूसरे के भीतर के
गहरे लगाव को समझ लिया जाए, तो विरोध—
जितनी तेजी से पनपता है, उससे भी अधिक तेज—
रफ्तार से पिघल भी जाता है, यही है इस
उपन्यास का कथा-सत्य, जिसे आज की प्रख्यात
कथा लेखिका ममता कालिया ने व्यंग और मर्म की भाषा
से संवारा है।

ममता कालिया

नरक दर नरक

हिन्द पॉकेट बुक्स

नरक दर नरक

वे जीवन मे काफी चौकन्ने रहे थे, फिर भी पता नहीं कैसे बड़ी जल्दी प्रेम उन दोनों के बीच घुसपैठ कर गया। तब रात का वक्त था और दोनों अपने-अपने अकेलेपन से पैदा हुई जरूरतों के मारे हुए थे। बाद में कई बार उन्होंने इस बात का मजाक उड़ाया, कई बार इसकी व्याख्या की, अफसोस भी किया कि किसी और नाम से यह क्यों नहीं हुआ। उन जैसे तरो ताजा दिमाग वाले लोगों को इतनी घिसी हुई संज्ञा 'प्रेम' कैसे ले बैठी, पर कोई फायदा नहीं हुआ। प्रेम अपनी जगह डटा रहा। जगन बोला, 'उसने नहीं सोचा था उस जैसा आदमी इस आसानी से पकड़ा जाएगा।' उषा ने भी शरमाते हुए कहा, 'उसने नहीं सोचा था कि पहली बार ही वह हमेशा के लिए बंध जाएगी।' फिर इस विषय पर वे दोनों चुप हो गए। ज्यादा बोलना दोनो के लिए खतरे पैदा कर सकता था। इसीलिए शायद प्रेम में मौन रहा जाता है। इतना वे ताड़ गए कि इस चुप में ही दोनों की भलाई है। बहरहाल वे सभी अजीबोगरीब हरकतें करते रहे जिनकी गणना प्रेमशास्त्री प्रेम के अन्तर्गत करते आए हैं। एक बार वे एलिफेन्टा केव्ज की पूरी सीढ़ियां एक सांस में चढ़ गए। एक बार बिना पहचाने वे गोश्त खा गए। एक बार एक ही दिन में उन्होंने दो फिल्में देख डाली। ऐसे ही एक घटना-पूर्ण दिन उन्होंने तय किया कि वे शादी कर डालें। दरअसल दिन-रात ईरानी रेस्तराओं मे बैठना और समुद्र के किनारे अंधेरा होने का इन्तजार करना, दोनों के लिए दुःखदायी प्रमाणित हो रहा था। वैसे विवाह को जगन एक पतनोन्मुख संस्था मानता था,

लेकिन उषा के घर में विवाह-पूर्व कोर्टशिप की एक किसी-किसी धानी गहरा र लगी थी। जो इन वैवाहिक ब्योरों को लेकर वे कभी परेशान नहीं हुए। अपनी-अपनी जन्मपत्री के बजाय उन्होंने पढ़ने दिया दिए। पढ़ने उन्होंने मार्क्सवादी वर्ग के गिनाते थे, लेकिन जगन विधवा के यह कहने पर कि बिना धर्म-परिवर्तन के वे ईसाई पद्धति से विवाह नहीं कर सकते, वे पुरो-हित-प्रथा में पड़ ही गए। पूरा महीना वे एक दूसरे को आश्वस्त करते रहे कि शादी भले वे आर्यसमाजी रीति से करें, भले सनातन, वे कोई आडम्बर स्वीकार नहीं करेंगे। इस तरह-भर, जिससे उनका साथ रहना गैरकानूनी न लगे, लेकिन ऐन शादी के दिन उनके यहाँ भी वही तमाशा पेश हुई, जो सबके यहाँ हुआ करती है। उनके पैरों में भी न कड़ियाँ बाँधी गई न दिए। सब कुछ ठीक वैसे हुआ, जैसे बड़ी कमला और ओमप्रकाश की शादी में होता आया है। उषा भी ससुराल गई। जगन ने भी उससे यही कहा कि वह उसकी माँ की मुराद रखने का यत्न करे। लिहाजा अपनी-अपनी ससुराल के संगुम से छूट जब वे बम्बई यात्रा पर रवाना हुए, उनका मन सपनों की जगह झुंझ-लाहट से भरा था और आह्लाद की जगह शिकायतों से। उन्हें यह भी लगा कि एक दूसरे को जानने में अभी उन्हें काफी वक्त देना होगा।

रास्ते में उन्होंने एक ही थाली मंगा कर खाना खाया और एक ही खीड़की में से इकट्ठे झुटपुटे पड़े। वे कुछ देर और साथ बैठते, लेकिन थ्री टायर के डिब्बे में बीच की बर्थ वाले आदमी ने उबासियाँ लेनी शुरू कर दीं। लिहाजा मन मसोसकर वे अपनी-अपनी बर्थ पर चले गए। जगन तो थोड़ी देर पढ़ कर सो गया, पर उषा निचली बर्थ पर पति और भविष्य की फिक्र में सो नहीं सकी। वह चाहती थी, उसके दिमाग में सिग्नल जैसी कोई हर-कत उसे इतना भर बता दे कि जो कुछ हुआ वह ठीक है या नहीं। उसने तो अभी तक सिर्फ अपने घर वालों का विरोध देखा था, जगन की बेताबी देखी थी, अपनी अकुलाहट और अपने सपने देखे थे। उनकी पहचान सिर्फ तीन महीने पुरानी थी। इतनी-सी बिना पर वह अपनी सब नावें जलाकर जगन के साथ चली आई थी। हालाँकि उसके पापा ने उसे बहुत आगाह किया

था। उनका दृढ़ विश्वास था कि शादी का मतलब औरत के लिए बरबादी होता है। वैसे वे यह सुनना कभी गवारा न करते कि इस संदर्भ में उन्होंने भी एक औरत का जीवन बरबाद किया है। उषा पर उन्होंने शुरू से ज्यादा-से-ज्यादा ध्यान दिया। इसका ही नतीजा था कि उषा की सर्टिफिकेट फाइल में तीन फर्स्ट क्लास थे। उन्होंने उषा को रसोई की हद से हमेशा दूर रखा। उसकी मां काम करते-करते थक जातीं, तो वे डबलरोटी से काम चला लेते। मां टोकती, 'तुम उषा को कहीं का न रखोगे। वे गर्व से कहते, 'मेरी उषा रोटियां नहीं बेलेगी। वह रसोई में पड़े-पड़े पीली नहीं होगी। वह इन्दिरा गांधी बनेगी। विजयलक्ष्मी पंडित बनेगी।'

पर जब वही उषा न विजयलक्ष्मी पंडित बनी और न इन्दिरा गांधी, बल्कि उषा साहनी बनने पर आमादा हो गई तो उसके पिता, 'पुनः मूषको भव' का खीझ भरा आशीष दे बिलकुल पीछे हट गए। उसकी मां को जरूर तसल्ली हुई कि लड़की अपनी सही जगह पर पहुंच गई, पर उनके भी मन में एक हाय-हाय रह गई कि लड़की अपनी बेवकूफी से पंजाब में जा पड़ी।

उसके परिवार में पंजाबी आदमी मूलतः झगड़ालू समझे जाते थे, झगड़ालू और थोथे। उसकी मां उन्हें दिल्ली का दलिद्दर कहती थी। खुद उषा भी हमेशा पंजाबी लड़कियों को अपने से उथला मानती आई थी। जब-जब उसकी पहचान किसी पंजाबी लड़की से हुई, अकसर उसके उच्चारण से उकता कर वह उससे घनिष्ठ नहीं हो पाई। उसे याद है कुसुम खन्ना चाकू को काकू और देगची को देक्ची कहती थी। ऐसे मौके पर उषा *अगर मौजूद होती, तो उसे बेसाख्ता हंसी आ जाती* और इस बात का पूरा परिवार बुरा मानता।

पर ये लड़कियां अपनी पोशाक और उठान से उसे हमेशा चमत्कृत करती रहीं। उनके चुस्त चूड़ीदार पाजामे और कमीज देखकर उसे समझ न आता कि ये लड़कियां इन कपड़ों के अन्दर घुसती कैसे हैं और निकलती कैसे। जेठा कॉलोनी में ऐसी दर्जनों लड़कियां थीं। उनके नाखून हमेशा चमकते रहते। उनके चेहरे देखकर लगता वे मक्खन और शहद से बनाए गए हैं।

सभी एक दो वर्ष के अन्तर से बी० ए०, इण्टर, बी० एस० सी० आदि की छात्राएं थीं, पर उनके हाथ में पाठ्य-पुस्तक शायद ही कभी दिखाई देती। वे अकसर फेमिना या फिल्मफेयर थामे मिलतीं। यों ये सब पत्रिकाएं उषा भी पढ़ती थी, लेकिन उसे कभी यह लालसा नहीं हुई कि वह भी अपना रूपान्तरण कर ले। यह शायद अच्छा ही था। यह काम होता बड़ा मुश्किल। उषा शुरू से ही हड्डियों का ढांचा थी। किसी दिन वह बिना कलफ की साड़ी पहन लेती तो उसके पापा कहते 'यह शरणार्थी शकल क्यों बना रखी है ?' जब वह स्कूल में थी, तो लड़के उसे कैटरपिलर कहते थे। इसीलिए उसकी लड़कों से कभी नहीं पटी। वे हमेशा जैसे लड़कियों को नम्बर देते रहते। जब उन्हें कोई ट्यूटोरियल लिखना होता या सेमिनार पेपर, वे उषा के पास आते, वरना वे मिस भम्भानी, मिस खन्ना, मिस मलहोत्रा के पीछे भागते नजर आते। ये लड़कियां उन्हें नोट्स तो क्या, प्रेम-पत्र भी ठीक-ठीक लिखकर नहीं पकड़ा सकती थीं, लेकिन इन लड़कियों की खाल गोरी थी, बदन गुदगुदा और आंखें कटारी। वे नहीं समझ सकती थीं कि ऐसे मौकों पर लायब्रेरी में सिर गड़ाकर वाचका पढ़ने वाली यह दुबली-सी लड़की कभी-कभी कितनी चोट खा जाती है। धीरे-धीरे उषा को लगने लगा था कि दुनिया में कुछ लड़कियां पढ़ने के लिए बनी हैं, तो कुछ चुहल करने के लिए। यूनिवर्सिटी में पहुंचने तक उषा इस बात की इतनी अभ्यस्त हो चुकी थी कि वहां उसे अपनी सनसनी रहित उपस्थिति को लेकर कोई ताज्जुब नहीं हुआ। उसके विभाग की वीना टण्डन, आशा बिरमानी और उर्मिला निगम सारा दिन यूनिवर्सिटी कैम्पस के वेन्गर्ज में बैठी रहती और तीन बजे तक घोषणा कर 'बहुत बोर हो गए' मेटिनी शो देखने चली जातीं अथवा शॉपिंग करने या फिर थी बारबरा डिमैलो जो क्लास में वर्ती टॉमस के साथ कुछ इस अन्दाज में बैठती कि उषा को लगता यह काव्यशास्त्र की नहीं, कामशास्त्र की क्लास में बैठी है। इन अर्थों में उषा न लोकप्रिय थी, न मिलनसार। अकेलेपन की उदासी से अपने को बचाने के लिए उषा को इसलिए किताबें अच्छे दोस्त की तरह लगती थीं। एक-एक टॉपिक पर वह दर्जनों संदर्भ-पुस्तकें पढ़ डालती थी। जब कभी सेमिनार

सेशन में उसकी बारी आती, उसका निबन्ध प्राध्यापक-वर्ग में बड़े उत्साह से सराहा जाता। अपनी लगन और अध्ययन-प्रियता के कारण वह जल्दी ही सभी प्रोफेसरों की प्रिय छात्र बन गई। वैसे इसके पीछे बहुत बड़ा हाथ उसके पापा का भी था, जो दिन भर हर घड़ी उसे कुछ-न-कुछ सिखाते रहते थे। जब वे दफ्तर से लौटते, उनका ब्रीफकेस किताबों से अटा होता। उषा का वक्त खराब न हो, इसलिए वे स्वयं उसके लिए केन्द्रीय सचिवालय लायब्रेरी, ब्रिटिश काउन्सिल और यू० एस० आई० एस० लायब्रेरी से किताबें छांट-छांट कर लाया करते। कभी उषा कहती, 'इतनी सब मैं कैसे याद रखूंगी!' पापा कहते, 'तोते की तरह रटना नहीं है समझना है। इतना सब पढ़कर दिमाग में कुछ तो खलबली मचेगी।' कोर्स की किताबों के अलावा वे सारा दिन उसे लाल पेन्सिल से निशान लगा-लगा कर लेख पढ़ने को देते रहते, कभी टाइम से, कभी लाइफ, तो कभी एनकाउंटर से। शेक्सपियर की कब्र की खुदाई के प्रस्ताव से लेकर बारबरा स्ट्रायसेन्ड तक, उषा को सब खबर थी। जब कि दूर से उसे देखकर कोई अन्दाज नहीं लगा सकता था कि वह कैसी लड़की होगी। औसत से ज्यादा सामान्य शक्ल और देह की उषा को कॉलोनी में कभी दूध के बूथ पर, कभी सब्जी की दुकान पर, कभी डाकघर में देखा जा सकता था। पापा के तेज स्वभाव के कारण उनके घर में कोई नौकर टिकता नहीं था और दफ्तर के चपरासी दफ्तर में डांट खा चुकने के बाद घरेलू काम करने का दम नहीं रखते थे। लिहाजा घर का सब काम वे तीनों अपने हाथों करते थे। उषा की मां फीकी, लेकिन सीधी किस्म की औरत थीं। चिट्ठी लिख सकने की लियाकत उनमें थी, लेकिन अंग्रेजी में वे अक्षर-ज्ञान के सिवा कुछ नहीं जानती थीं। शुरू-शुरू में पापा ने बड़ा चाहा कि वे अंग्रेजी पढ़ना और लिखना सीख लें। इसके लिए वे बेसिक गोल्डन रीडर के दोनों भाग खरीद लाए, पर मां बहुत प्रगति नहीं कर सकीं। पापा उन्हें बड़ी लगन से पढ़ाने बैठते पर जैसे ही वे इज की जगह इज और प्लेजेंट की जगह प्लेजेन्ट कहतीं, उनका सारा उत्साह ठंडा पड़ जाता। हर शिक्षित हिन्दुस्तानी की तरह उनकी भी आकांक्षा थी कि उनकी बीवी फर्राटे से अंग्रेजी बोला करे। उनका खयाल

था कि माँ का अंग्रेजी न जानना उनकी उन्नति में बाधक था। लगभग किसी पार्टी में वहाँ बहुत से मशहूर लोग होते, उनकी पत्नियाँ स्मार्ट तरीकों से आने-जाने वालों के सत्कार की खुशा-मद में लगी रहतीं पर उनकी सुन्दर बीवी किसी एक कोने में गठरी-सी चुप बैठी रहती। इस सन्दर्भ में वे अनजान थे। उन्हें नहीं पता था उनकी यह गुड़िया सी पत्नी अंग्रेजी क्या हिन्दी भी न जानती और सिर्फ उनके बगल में पास बैठ मुस्-कुरा भर देती, तो विकास के द्वार उनके सामने खुल कर खुल जाते। लेकिन वे इस क्षेत्र में नये-नये आए थे, इसलिए कच्चे थे।

इससे पहले वे विश्वकर्मा कॉलेज में प्रिंसिपल थे। एक छोटी-सी बात पर उन्होंने यह दस साल पुरानी नौकरी छोड़ दी थी। उनके मैनेजर किरोड़ीलाल ने अपनी भतीजी के ब्याह पर उनसे माँग रखी कि वे तीन दिन के लिए कॉलेज बंद कर दें और विशिष्ट बारात के लिए खाली करवा दें। उन्होंने कहा बिना वजह कॉलेज में छुट्टी नहीं की जाएगी। किरोड़ीलाल खफा हो गए। आखिर उनकी इकलौती भतीजी का विवाह था और बारात बम्बई से आ रही थी। यों वे आसानी से कोई धर्म-शाला ले सकते थे, पर उनका कहना था, जब इतना पैसा लगा-कर उन्होंने कॉलेज बनवाया है, तो वे पराई जगह क्यों माँगें। कॉलेज उनका है न कि लड़कों का। पापा तन गए। उन्होंने इस्तीफा लिखकर दे दिया कि जिस कॉलेज का मैनेजर इतनी घटिया बात कर सकता है, वहाँ वे काम करने में असमर्थ हैं।

छात्रों की तरफ से भी उनका मोह भंग हुआ था। उनका व्यक्तित्व मूलतः एक अध्यापक का व्यक्तित्व था। वे हर समय आदर्श छात्र की तलाश में रहते, पर छात्र कुन्जियों की। इम्त-हान के दिनों में एक बार एक छात्र का पिता उनके घर चला आया था। जेब में सौ-सौ के नोट ठूँस और रिक्शे में घी का पीपा लदवा। उसके बेटे का यह बी० ए० फाइनल का इम्तहान था और इसमें पास हो जाने से शादी-बाजार में उसकी कीमत काफी बढ़ने की उम्मीद थी। पापा ने स्थिति पहचान कर देर तक दरवाजे बन्द रखे थे और जब खोले तो एक ही ठोकर में घी का पीपा सीढ़ियों से धकेल दिया था। पिघला हुआ घी तेज

क छोड़ता हुआ दूर तक बहता गया था। लड़के के बाप ने
ए हुए सांप की तरह फुफकार कर उन्हें देखा था और पैर
पपाता हुआ चला गया। अगले ही हफ्ते गुरुवार को जब
ा कॉलेज में राउंड पर निकले और जूनियर सेक्शन से
नियर सेक्शन की तरफ जा रहे थे, मैदान में किसी ने पीछे से
र पर लाठी का वार किया। सिर फट गया था, अठारह टांके
े थे। हफ्तों ड्रेसिंग हुई थी, कोई भी अपराधी पकड़ा नहीं
ा था···। इस दुर्घटना के महीने भर बाद जब उन्होंने जॉयन
या था, तो यह फिरोज़ोलाल वाला वाकया हुआ था। सिहाजा
इस्तीफा दे चले आए थे।

बौद्धिक स्तर पर यह शिकस्त उन्हें सीधे उषा से जोड़ बैठी
ा, जो उस समय उम्र के उस पहिए पर खड़ी थी कि उसकी
िया कहीं भी मोड़ी जा सकती थी। यह उनके वर्षों के अथक
रिश्रम का फल था कि अब वह उषा से मनरो डॉक्टरीन से
कर मैरिलीन मनरो तक, किसी भी विषय पर चर्चा कर सकते
। उन्होंने उसे न सिर्फ डिस्कवरी ऑफ इंडिया पढ़ाया था
रन शेपर एक जीवनी भी। जब उषा एम० ए० के इम्तहान
बैठी तो पापा को लगा, यह इस सफर का अन्त नहीं शुरुआत
, इसके बाद वह पी० एच० डी० करेगी। उसी दौरान विदेश
ाएगी, वहां से लौटकर सीधे किसी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर
न जाएगी। उन्होंने सारा हिसाब लगाया हुआ था, पर इस
ारे हिसाब किताब में वे यह भूल गए थे कि उषा की उम्र
िर्फ इक्कीस साल चार महीने है और इक्कीस साल की लड़की
ा एक और अकेलापन होता है, जो लाख किताबें पढ़कर भी
अकेलापन ही बना रहता है।

उषा जब भाग चली गई थी ग्रीष्मकालीन सत्यान में
बम्बई और जब वह वहां से लौटी तो उषा नहीं थी, सिर से पैर
तक इन्तजार थी। बम्बई में उषा को जोगिन्दर साहनी मिला
था, जो केड़िया कॉलिज में पढ़ाता था और जिस पर समुद्र और
हिप्पी बुरी तरह हावी थे। दरअसल वहां इन सत्तर छात्रों के
ठहरने का इन्तजाम किया गया था। वह इसी केड़िया कॉलिज के
कमरे थे, जिनमें सत्र प्रारंभ होने पर कक्षाएं लगती थी, इन दिनों

उस दिन बारह दस की क्लास में जोगेन्दर साहनी का लेक्चर था। विषय था, भारतीय लेखकों के अंग्रेजी लेखन की प्रासंगिकता। जोगेन्दर साहनी इण्डो एंग्लियन लेखन और लेखकों को धुआधार ध्वस्त कर रहा था। इसे सिर्फ पैसे कमाने की कला, विदेशी शक्तियों की चाटुकारी, अपनी संस्कृति के प्रति लगाव का अभाव वगैरह-वगैरह बता रहा था। उषा ने उठकर कहा, 'सर ! आपकी नजर में अंग्रेजी में लिखना गैर ईमानदारी है, अंग्रेजी पढ़ना या पढ़ाना नहीं ?'

सभी छात्र हंस पड़े थे। सबने अलग-अलग बोलना शुरू कर दिया था। सिर्फ इसलिए कि बहस छिड़ जाए और एक बजे का बजर हो जाए।

जोगेन्दर साहनी बोला, "लिखना निजी अभिव्यक्ति होती है और निजी अभिव्यक्ति अपनी मातृभाषा के सिवा और किसी भी भाषा में सम्भव या स्वाभाविक नहीं।'

मिस मिमया ने उठकर कहा, 'सर ! मेरी मातृभाषा कुर्गी है। उसकी कोई लिपि नहीं। मैं किसमें लिखूं, आपकी क्या सलाह है ?'

सब छात्र हो-हो कर हंस दिए।

मिस थडानी बोली, "सर ! सिन्धी मुझे बोलनी आती है, लिखनी नहीं, मैं कैसे लिखूं।'

'तुम्हें कभी इसकी जरूरत नहीं पड़ेगी।' जोगेन्दर ने जवाब दिया।

लेकिन क्लास का माहौल बिगड़ चुका था। लड़के जोर-जोर से आपस में बहस करने लगे थे, फिर नीली पेंट वाले एक लड़के ने उठकर पूछा, 'सर ! राजाराव ज्यादा महत्वपूर्ण है या आर० के० नारायण ?'

'कोई भी नहीं।' जोगेन्दर ने कहा।

उषा को अफसोस हुआ। उसने मजाक के स्तर पर प्रश्न नहीं किया था, पर इस माहौल में गंभीर विवाद की कोई सम्भावना नहीं थी। लेक्चर में विघ्न पड़ने से जोगेन्दर साहनी का मूड खराब लग रहा था।

तभी बजर हो गया।

भारतवर्ष का इतिहास इस तरह न भटकता। शायद नेहरू को फालिज न मारता। शायद नेहरू युग इस फीकी तरह खत्म न होता।'

सुभाष बोला, 'हां, फिर हमारे उद्योग को यह गजब का रिसेशन न भुगतना पड़ता। ये बड़ी-बड़ी इमारतें यों अधबनी न पड़ी रहतीं।'

कैंटीन की खिड़की से फ्लोरा फाउन्टेन के आस-पास के इलाके में दर्जनों ऊंची-ऊंची इमारतें अधबनी यों खड़ी थीं जैसे किसी ने बीच में ही शॉट फ्रीज कर दिया हो। अच्छे-अच्छे कारोबार ठप्प हो गए थे। अधिकांश नई योजनाओं पर पानी फिर गया था। हिन्दुस्तान पूरी तरह डगमगा गया था। रातों-रात सदाबहार नेहरू बूढ़े हो गए थे। पड़ोसी देशों का रुख बदल गया था। विश्व-प्रेम हमारी लीडरशिप पर अजीबोगरीब टिप्पणियां दे रहा था।

सुभाष तुरशिया के पास आज की शाम गुजारने का कोई खास प्रोग्राम नहीं था। उसने आदतन प्रस्ताव रखा, मिस जैन आज शाम एक्सेलसियर पर मिलें, बढ़िया मूवी लगी हुई है 'टू फॉर द रोड।'

उषा को सकोच हुआ।

उसने अब तक सिनेमा मां-पापा के साथ देखा था या सहेलियों के।

यह पहला मौका था।

कांपते उत्साह से झनझनाते हुए उसने कहा, 'हां, लेकिन एक्सेलसियर किस तरफ है ?'

'टैक्सी वाला बता देगा।' सुभाष ने कहा।

अचानक उषा को उठने की जल्दी हो गई थी।

'सी यू।' कहती वह वहां से निकल अपने कमरे में आ गई थी।

कमरे में सिर्फ रेनु रहेजा थी। वह शीशे के आगे बैठी अपनी भवें संवार रही थी।

बिना कपड़े बदले, बिना खाना खाये, उषा बिस्तर पर पड़ गई। डर और उत्साह की सनसनी उसे आन्दोलित किए जा रही थी। रेनु उसके चेहरे का सतरंगापन न देख ले, इसलिए

उसने करवट बदल ली। कलाई पर बंधी नन्ही-सी 'टिटोनी' को कान पर ले जाकर 'टिक टिक' सुनी। बड़ी देर तक वह अपने आपको थामने की कोशिश करती रही। अपने आस-पास के अहसास के साथ उसे पहली चिन्ता हुई, शाम को क्या पहनेगी। उसने सूटकेस की सब साड़ियां उलट-पलट डालीं। कोई इस शाम के लायक न थी। वह अक्सर मर्सराइज़्ड, ऐंग, या शीन कपड़ा की साड़ियां पहनती थी। यही वह बम्बई से लाई थी। अब उसे अफसोस हुआ, क्यों नहीं वह चलते वक्त मां से वह सुनहरी धोती मांग लाई या वह हलकी सीमी। उसे लगा, खामख्वाह उसने अपना यह सेवाग्राम-दुनिया बना रखा है। रेनु रहेजा के पास एक-से-एक चटक कपड़े थे। सिनथेटिक बनावटवाला छः गज चौवालीस के सिवा कुछ पहनती ही नहीं थी। एक वही बहन बनी हुई थी। वैसे वह हिम्मत करती, तो अभी बाज़ार जाकर साड़ी खरीद सकती थी। इतने रुपये उसके पास थे, पर कम उसके लिए नया शहर था और उसके मन में इस शाम की मुला-कात के प्रति उत्कट उत्तेजना होते हुए भी बेतरह संकोच था। उसने झेंप-ही-झेंप में सुभाष को अच्छी तरह देखा भी नहीं बल्कि उसे अब शक हो रहा था कि एक्सलेटियर पर उसे पहचान भी लेगी कि नहीं। उसे बस इतना याद था वह सांवला, लेकिन आकर्षक, सख्त डीलडौल वाला लड़का था। बाएं हाथ में उसने बिनाका ब्रेसलेट पहना हुआ था और उसके पैरों में ऐम्बेसडर जूते थे, जो उसने पिछले महीने दिल्ली में बाटा के शो रूम में देखे थे। आखिर पांच बजे उषा ने मुंह-हाथ धोये, बाल संवारे और नीम रंग की हैंडलूम साड़ी निकाली, जिस पर गहरी उन्नाबी किनारी थी। उसे भय था, नहीं वह अच्छा लगने के चक्कर में ज्यादा पाउडर न लगा ले। वह जल्दी ही शीशे के सामने से हट गई।

यह तय था, वह बहुत सेल्फ-कांशस हो रही होगी, इसलिए रेनु रहेजा ने उसकी तरफ देख कर कहा, 'गॉट ए डेट ? ?'

'नहीं-नहीं···।' उषा बुरी तरह घबरा गई। बिना कुछ कहे वह दरवाजे की तरफ चल दी। रेनु ने रोक कर कहा, 'तुम्हारी साड़ी ठीक कर दूं।' उसने पीछे से साड़ी को खींच कर एड़ियां ढंक दीं और अगली पर्त की किनारी

सीधी कर दी।

'थैंक्यू !' कहते हुए उषा लगभग भाग ली।

बाहर निकल उसने गेट से ही टैक्सी ले ली। एक रुपये पैंतीस पैसे में जब वह एक्सलेसियर उतरी, उस वक्त सिर्फ पौने छः बजे थे।

उसे अपने जल्दी चले आने का अटपटापन महसूस हुआ।

उसने एक बार फिर पोस्टर पर निगाह दौड़ाई। फिल्म साढ़े छः से शुरू थी।

यह थियेटर बम्बई की बाकी इमारतों से भिन्न था। यह उतना बड़ा और पक्का होने का एहसास नहीं देता था, जैसा आमतौर पर बम्बई को देखकर होता था। अहाते में एक तरफ खुला स्नेकबार था, एक तरफ बन्द। बन्द स्नेकबार में बड़ा-सा शीशे का दरवाजा लगा था। उसने एक बार अच्छी तरह सभी मेजों पर देखा, सुभाष दुरखिया वहां भी नहीं था।

उषा अगली फिल्म 'द फैमिली वे' के चित्र देखने लगी, पर उसमें उसका मन नहीं लगा। बार-बार फाटक की ओर देख रही थी।

जैसे-जैसे वक्त बीत रहा था। उसका अटपटापन बढ़ता जा रहा था। उसे अपने ऊपर गुस्सा आ रहा था। क्या जरूरत थी एक ही बार में मान जाने की। कितना नदीदापन दिखाया उसने !

दुनिया भर की लड़कियों को छिछली समझती है और वह खुद ! साढ़े छः होते-होते तक उसने पाया लाउंज में अब और वहां होना असंभव है।

भीड़ बढ़ती जा रही थी।

उसका अकेला, परेशान चेहरा कुछ एक लोगों में कौतूहल जगा रहा था।

वह कांच का दरवाजा धकेलकर स्नेकबार में घुस गई। अपमान और आक्रोश के मारे उसे न चाय की इच्छा थी न कॉफी की। सिर्फ जगह की जरूरत समझते हुए उसने निर्जीव स्वर में आर्डर दिया, 'एस्प्रेसो।'

आस-पास कहीं कोई पत्रिका, कोई अखबार नहीं था जो उसे संयत हो सकने की ओट देता। वह मुंह झुकाए मेज के कांच

में अपनी आँखें देखती रही। उसने सोचा अब अगर सुभाष आ जाए तो वह पिक्चर नहीं देखेगी। सिर दर्द का बहाना लगाकर वापस चली जाएगी।

वेटर मेज पर एक ग्लास पानी और एक प्याला कॉफी रख गया।

उसने पानी पिया और ठंडे ग्लास पर उंगली से लकीरें खींचने लगी।

तभी काँच का दरवाजा खुला।

उम्मीद और तनाव से उषा का दिल दहला, 'सुभाष!'

उसने उस ओर देखा, न चाहते हुए भी उसने पहचाना, जोगिन्दर साहनी, सुबह वाले कपड़ों में, सुबह वाली डायरी पकड़े, सुस्त-सा अन्दर घुस रहा था।

उषा एक नये संकोच से जकड़ गई।

वह उसे जरूर पहचान लेगा। अनजाने ही सुबह उषा क्लास में एक बुनी की हैसियत से मराही गई थी, जबकि उसका इरादा उससे अलग था। उसे यह बात तब विचित्र लगी थी कि यह शकल से लड़का, पर मुद्रा से आदमी लगने वाला प्राध्यापक इतनी साफ अंग्रेजी में अंग्रेजी लिखने वालों को लताड़ बता रहा है। उषा की निगाह में अंग्रेजी बोलने वाले और लिखने वाले दोनों मौसेरे भाई थे। एक को दूसरे के विरुद्ध बोलने का हक ही नहीं था। फिर सभी भारतीय आंग्ल रचनाएं जानी भी नहीं थीं। सरोजनी नायडू और मुल्कराज आनन्द उसे कभी जानी नहीं लगे, जबकि झाबवाला और राजाराव लगते थे।

कॉफी बिलकुल ठंडी हो चुकी थी। उषा ने एक सिप लिया और प्याला वापिस रख दिया। उसे अपनी मेज का बेटर नजर आया 'बिल!' उसने कहा और पर्स खोलने लगी।

पैसे देकर वह उठी, तो उसने पाया कुछ दूर सामने की मेज से जोगिन्दर साहनी उसे ही देख रहा है। पस्त और परेशान होने के बावजूद वह ठिठक-सी गई और कुछ तय करते-न-करते उसकी मेज तक पहुँच गई।

निहायत शालीन लहजे में उसने कहा, 'उसे सुबह की घटना के लिए अफसोस है, उसका मतलब वह नहीं था जो बनारस ने

समझा।'

जोयेन्दर साहनी का चेहरा कुछ सख्त हो आया। बाहिराना तौर पर वह बोला, 'आमतौर पर ऐसी शरारतें पर मैं बहुत सख्त कदम लेता हूं। अगर आपकी जगह कोई लड़का होता, तो मेरा व्यवहार कुछ और होता।'

उसने फिर कहा, उसे अफसोस है।

साहनी अब कुछ हलका हो आया, 'कोई बात नहीं, पर आप क्या वास्तव में ऐसा सोचती हैं ?'

'हां।'

'आप भारतीय अंग्रेजी लेखन को महत्त्वपूर्ण मानती हैं?'

'सम्पूर्ण नहीं, पर कुछ।'

'जैसे ?'

'द कुली, द स्कूल टीचर।'

'इनका मैं जिक्र भी नहीं करना चाहूंगा।'

वेटर उस मेज की कॉफी ला रहा था।

उषा ने कहा, 'मैं इजाजत चाहूंगी, गुड ईवनिंग !'

'अगर आप एक कॉफी ले लें तो इस बात को हम अभी थ्रैश आउट कर लें।'

उषा बजबूरन बैठ गई। वह फिर से उद्दंड होने का भ्रम नहीं देना चाहती थी।

'आप किस युनिवर्सिटी से हैं ?

'दिल्ली।'

'आपको जरूर प्रोफेसर राजन पढ़ाते होंगे। तभी आप भारतीय-अंग्रेजी लेखन की वकालत कर रही हैं, लेकिन राजन स्वयं कहीं से भी भारतीय नहीं बचे हैं।'

उषा अपने प्रिय प्रोफेसर के खिलाफ एक शब्द भी सुनना बर्दाश्त नहीं कर सकती थी।

'क्या सिर्फ कुर्ता पायजामा पहनना और गलत अंग्रेजी बोलना ही भारतीयता हो सकती है ?'

आप मेरी बात को गलत मरोड़ दे रही हैं। मेरा अभिप्राय इतना सतही नहीं है और फिर क्या सही अंग्रेजी लिखना-बोलना आप इतनी बड़ी उपलब्धि मानती हैं। जरूर आप किसी कॉन्वेन्ट की पैदावार हैं, जहां बच्चों को 'बाबा ब्लैक शीप' रटा-रटाकर

नेल छांटने। एक ही झटके में, उल्लू बन गई। कल बराबर का सुपर-स्टार होगा सुभाष तुरखिया।

और वह जोगेन्दर साहनी चलते-चलते जैसे उसे दुराशीष दे रहा था, 'आप जीवन में बहुत कष्ट उठायेंगी।'

ऐसे बढ़-बढ़ कर बोल रहा था, जैसे एक वही सही-मानव है।

वैसे जोगेन्दर साहनी से वह कभी भी निपट लेगी। बहस में उसका सानी नहीं; पर सुभाष तुरखिया?

इस ग्लानि को वह चेहरे पर से कैसे पोंछ पायेगी?

बायीं तरफ की मेजों पर प्लेटें लगाकर जब दुखीराम वापिस आ रहा था, उसने देखा रुआंसी सूरत में उषा अनछुये खाने की प्लेट लिए बैठी है। उसने पास आ हमदर्दी से पूछा, 'क्या बात है? तबीयत ठीक नहीं है? खाना नहीं खाना तो दूध ला दूं?

उषा ने गरदन हिला दी।

थोड़ी देर में वह एक प्याला दूध ले आया।

उषा ने दूध पिया। दूध एक दम पानी था।

फिर भी उसने कृतज्ञ महसूस करते हुए दुखीराम को एक चवन्नी दे डाली। दुखीराम बच्चों की तरह खुश हो गया।

उसका कमरा अगली ही मंजिल पर था। वह सीढ़ियां चढ़ गई।

कमरे में बिलकिस और रेनु थीं।

लगता था रेनु बिलकिस को बता चुकी थी, क्योंकि उसके घुसते ही वे दोनों शरारत से मुसकराईं। बड़ी कोशिश से उषा ने उन्हें 'हैलो' कहा और धम्म से बिस्तर पर पड़ गई। उसका मूड देख वे दोनों चुप हो गयीं।

काफी देर उषा ने सोने की निरर्थक कोशिश की, फिर तंग आकर उसने अपने आपको ख्यालों के हवाले कर दिया।

इस समय एक तरफ उसे आक्रोश, शर्मिन्दगी और अफसोस था। दूसरी तरफ एक नामालूम हलका-सा दिलासा कि साहनी को उसने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी। असहमत होते हुए भी वह उसकी बात को समझता था। उस संक्षिप्त बातचीत में उसे तसल्ली हुई भी थी और नहीं भी; लेकिन जोगेन्दर साहनी से

ई असहमति के प्रति उसे कोई छटपटाहट नहीं थी। वह भीतर
ौर बाहर की ऐंठन थी सुभाष द्वारा बेवकूफ बनाएँ जाने की।
गर उसने यह मजाक किया था, तो यह निहायत घटिया
क़िस्म का मज़ाक़ था शायद वह अपने आपको 'सुपरकूल'
ताना चाहता था।'

'ज़रूर यह इनकी पहली डेट थी!' रेनु उसे सीधा समझ
बिलकिस से कह रही थी।

'अभी यह हालत है तो अगली डेट पर क्या यह स्ट्रेचर पर
अन्दर लाई जाएगी?'

'नहीं, यार! कुछ गड़बड़ मालूम होती है। भी सीम्ज़ अप-
सेट।' रेनु बोली, 'बड़े चाव से साढ़े पांच बजे गई थी।'

'मैं तो इसका चेहरा देखकर ही समझ गई थी आज कुछ
खास बात है। तुमने कभी सांवले रंग पर गुलाबी रंग देखा
है?"

'लाहौल विला कुव्वत! उम्र में तो बीस-बाइस से कम
नहीं लगती। अगर आज पहली डेट थी, तो क्या बुढ़ापे तक
मंगनी करवाएगी।' बिलकिस ने कहा।

'क़िस्मत है।' रेनु ने कहा, 'चलो, खाना खाएं। बत्ती
बुझा दो।'

सुबह जब ऊषा क्लास के लिए तैयार हुई उसकी आंखों में
रात-भर की नींद और निर्णय था। उसने सोच लिया था अगर
उसे और अपमानित करने की गर्ज़ से सुभाष दुरखिया उससे
माफ़ी मांगने आया, तो वह तेज़ शब्दों में उसे डांट देगी। उसकी
रिपोर्ट कर देने की धमकी देगी। उसके सामने उसी का भद्दापन
खोलकर रख देगी।

ज़रूर उसकी पूरी मुद्रा एक लड़ाकू की रही होगी, क्योंकि
जब वह नीचे का दालान पार कर दूसरी लिफ्ट के लिए 'क्यू' में
खड़ी थी, किसीने बड़े विनोद से उससे पूछा, 'आज किससे लोहा
लेना है आपको?'

ऊषा ने अचकचाकर देखा, जोगेन्दर साहनी क्यू में ज़रा
आगे खड़ा उसी की ओर देखकर मुसकरा रहा था। वह संकोच
से सिमट गई। इतने परिचित लहजे के लिए वह तैयार नहीं
थी।

हुई अशाइसनि के प्रति उसे कोई छटपटाहट नहीं थी। यह भीतर और बाहर की ऐंठन थी सुभाष द्वारा बेवकूफ बनाए जाने की। अगर उसने यह मजाक किया था, तो यह निहायत घटिया किस्म का मजाक था। शायद वह अपने आपको 'धुरंधर' जताना चाहता था।'

'जरूर यह इनकी पहली डेट थी।' रेनु उसे सीधा समझ बिलकिस से कह रही थी।

'अभी यह हालत है तो अगली डेट पर क्या यह पैर पर अन्दर लाई जाएंगी ?'

'नहीं, यार ! कुछ गड़बड़ मालूम देती है। शी सीम्ज अपसेट।' रेनु बोली, 'बड़े चाव से साढ़े पांच बजे गई थी।'

'मैं तो इनका चेहरा देखकर ही समझ गई थी आज कुछ खास बात है। तुमने कभी सांवले रंग पर गुलाबी रंग देखा है ?"

'माहौल विला कुव्वत ! उम्र में तो बीस-बाइस से कम नहीं लगती। अगर आज पहली डेट थी, तो क्या बुढ़ापे तक मेंगनी करवाएगी !' बिलकिस ने कहा।

'किस्मत है।' रेनु ने कहा, 'चलो, खाना खाएं। बत्ती बुझा दो।'

सुबह जब ऊषा स्नान के लिए तैयार हुई उसकी आंखों में रात-भर की नींद और निर्णय था। उसने सोच लिया था, अगर उसे और अपमानित करने की गर्ज से सुभाष तुरखिया उससे माफी मांगने आया, तो वह तेज शब्दों में उसे डांट देगी। उसकी रिपोर्ट कर देने की धमकी देगी। उसके सामने उसी का महापन खोलकर रख देगी।

जरूर उसकी पूरी मुद्रा एक लड़ाकू की रही होगी, क्योंकि जब वह नीचे का दालान पार कर दूसरी लिफ्ट के लिए 'क्यू' में खड़ी थी, किसीने बड़े विनोद से उससे पूछा, 'आज किससे लोहा लेना है आपको ?'

ऊषा ने अचकचाकर देखा, जोगेन्दर साहनी क्यू में जरा आगे खड़ा उसी की ओर देखकर मुसकरा रहा था। वह संकोच से सिमट गई। इतने परिचित लहजे के लिए वह तैयार नहीं थी।

बात गा रहे हैं। सुविख्यात गीतों के सहारे वे जीवन भर अपनी महफिलों व नौकरियों का आवेष्टन करते रहे।

उसकी इच्छा हुई, कहीं से इस वक्त ब्राउनिंग की पोथी मिल जाती।

ब्राउनिंग के श्रेष्ठ कवितांश उसे कंठस्थ थे। उन्हीं को एक बार फिर वह पढ़ गई। दुरूह कविताओं को वह दो-एक पंक्ति के आगे पढ़ नहीं पाई। क्या कवि का संसार इतनी जल्द नाना बन जाता है ?

यह उषा का स्वभाव था। छोटे-छोटे मसलों को लेकर वह बातों से भर आती थी।

ऊँची एड़ी की चप्पलें टक-टक करती कमलेश और संध्या कमरे में दाखिल हुईं। वे बहुत उत्तेजित थीं। आज उन्होंने दिलीपकुमार, श्यामा और वहीदा को 'वहमी' के सेट पर देखा था। वे अन्धेरी मोहन स्टूडियो से शूटिंग देखकर सीधी आ रही थीं। वहाँ वे बम्बई की ही छात्रा सुधा देशपांडे को लेकर घूमी थीं। सुधा का भाई वसन्त देशपांडे टी० एन० प्रोडक्शन्स का कन्टीन्यूटी असिस्टेंट था। उसका काम था नायिका की साड़ी से लेकर सैंडिल तक और ब्रा से लेकर वार्निश तक, सब साधनों-प्रसाधनों का दृश्य के हिसाब से लेखाजोखा रखे, ताकि ऐसा न हो कि दर्शकों को एक ही दृश्य में नायिका गुलाबी से सफेद, सफेद से उन्नाबी होती नजर आए, फिर भी वसन्त को आज सबके सामने कसकर डांट पड़ी थी। निर्माता के साथ-साथ हीरो ने उसे झिड़का था। उनका कहना था कि कल गीत वाले दृश्य में नायिका की साड़ी का पल्ला उसके कन्धे पर नहीं, उसकी कमर के पास गिरा हुआ था। वसन्त का कहना था, उसने लिखा हुआ है 'साड़ी से बाईं बाँह कलाई तक ढंकी।' पिछले दिन गीत के दृश्य की शूटिंग पर होंठ चलाते-चलाते नायिका थक गई थी। लिहाजा यूनिट ने पैकअप कर लिया था। वसन्त ने कई बार कहा, कापी दिखलाई, पर हीरो मानने को तैयार न था। ऐसी गड़बड़ मचने पर जाहिर है, निर्माता सिर पकड़कर बैठ जाता। उसकी कच्ची फिल्म, सूद पर लिया लाखों का उधार उसे कपूर बनता नजर आता। सितारों पर तो वह बिगड़ नहीं सकता था, इसलिए निचले वर्ग के कर्मचारियों पर जी भर उबलता।

आज शूटिंग देखकर कमलेश और संध्या एक तरफ खुश, तो दूसरी तरफ उनका मोहभंग भी हुआ था। जिन्हें वे फ़िल्मों में आलीशान बंगले समझती थीं, वे सेट पर लकड़ी के चरमराते, डावांडोल, सस्ते रोगन से पुते, ढीले ढांचे थे। शूटिंग में फ़िल्म की-सी तेज़ी से चीज़ें नहीं हो रही थीं। एक सीन दसियों बार दोहराया जा रहा था। जिस नायिका के बारे में वे कल्पना करती थीं, एकदम परियों के समान गोरी और छरहरी होगी, सांवली और दुबली थी और आज उसे मेकअप से बदसूरत हो रहा था। वह नायक जो अभी भी पर्दे पर उन्हें इतना आन्दोलित कर देता था, एक-एक कर सबको सताए हुए था। जिस पेड़ के नीचे खड़ी हो नायिका गाना गा रही थी, उसकी पत्तियां टीन की थीं और फूल कागज़ के।

तभी चाय की घंटी बजी। उषा ने कमलेश और संध्या से कहा, 'चलती हो।'

'न बाबा! इतनी गर्मी में चाय? इससे अच्छा है कैंटीन में जाकर कोक पिए।' संध्या कुर्सी पर साड़ी पटक, हुँ किया पावन चादर की तरह शरीर पर डाल लेट गई।

उषा अकेली चल दी।

चाय का समय कुतूहल का समय था। डेढ़ सौ हम उम्र लड़के-लड़कियों का हुजूम बड़ी जल्दी आपस में घनिष्ठ हो गया था। एक मेज़ पर बठने को तो आठ-आठ छात्र बैठ सकते थे, पर जिस मेज़ पर कोई लड़का-लड़की साथ बैठ जाते, कुछ इस अन्दाज़ में, 'मत सताओ अभी तो हस्तेदा है।' वहां और कोई न बैठता, बल्कि ठीक उसके बगल की या सामने की मेज़ पर बैठ ठहाके लगाने शुरू हो जाते। इस समय सब दिनान्त की मस्ती लिए थे। सामने बम्बई की चौड़ी सड़कें नापने के लिए शाम थी, आसपास कोई-न-कोई आकर्षक लड़की। यह उम्र ही कुछ ऐसी थी, जिसे देखते वही आकर्षक लगता / लगती। दुखीराम, मोर और बिट्ठल फुर्ती से सबके आगे चाय और नाश्ता रखते जा रहे थे।

उषा आई तो बड़े जोश में थी, पर चाय चखते ही ठंडी हो

और अंगुलियों में वह चीज़ पड़ी थी। आसें-पास हरकत भर उठी थी। उलझन और उसके बेनाम से वह भागती हुई बाहर निकल आई और स्कूटर लेकर सीधी घर आ गई। उसके बाद कभी अकेली निकलकर नहीं गई।

लेटे-लेटे पता नहीं कब उसकी आँख लग गई। वह बड़ी गहरी नींद में रही होगी जब बिलकिस ने उसे झंझोड़कर उठाया. 'लो, तुम यहाँ सोई पड़ी हो, यहाँ तुम्हारी मेहमानदारी तक गई। रेनु बेचारी मजाक कर रही थी तुम डेटिंग पर गई हो। जल्दी जाओ, सर जाने ही वाले होंगे।'

उषा झटके से उठी। बेदम नींद से भारी हुआ पड़ा था। किसी तरह बिस्तर के नीचे से स्लीपर ढूँढ़ी और भागी नीचे।

पाँचवीं मंजिल पर जहाँ सुपरिंटेंडेंट्स ऑफिस था, खिड़की से पीठ टिकाए जोगेन्दर साहनी खड़ा था, हाथ में बन्द रजिस्टर और माथे पर शिकन लिए। 'सर! एक्सक्यूज मी, मैं सो गई थी। रोलकॉल का मुझे ध्यान ही नहीं रहा।'

जोगेन्दर साहनी उसे देखता रह गया। नींद में भरी भरी-भरी काली आँखें, बिखरे बाल, सिकुड़ी-सी साड़ी, आवाज में बसी नींद का भारीपन! यह दुबली-सी लड़की रात के नौ बजे उसे बेहद आकर्षक लगी।

वह बरबस मुस्करा दिया।

उसने नहीं सोचा था, इतना अमल चेहरा उसे इस वक्त इस कदर ताज़ा कर जाएगा।

अभी कुछ देर पहले वह इस इकलौते रोल नम्बर के बारे में जाने क्या-क्या सोच गया था। डेटिंग पर निकली होगी। फंस गई होगी किसी हुलिगन के चक्कर में, तो लौट भी नहीं पाएगी। उसे प्रिंसिपल को फोन करना होगा, सुबह फिर जल्दी आना होगा...।

उसने उषा को गहरे तक देखते हुए रजिस्टर में पी लगा दी। उषा के सच में झूठ की गुंजाइश नहीं थी।

चन्दाबाई ने ऑफिस में ताला डाल दिया और बड़े बरामदे में घसीटकर अपना लोहे का पलंग छोटे बरामदे में लाने लगी। रात की ड्यूटी की तैयारी में।

जोगेन्दर का मन हो रहा था वह रुककर इस लड़की से बात

था। उनका दृढ़ विश्वास था कि शादी का मतलब औरत के लिए बरबादी होता है। वैसे वे यह सुनना कभी गवारा न करते कि इस संदर्भ में उन्होंने भी एक औरत का जीवन बरबाद किया है। उषा पर उन्होंने शुरू से ज्यादा-से-ज्यादा ध्यान दिया। इसका ही नतीजा था कि उषा की सर्टिफिकेट फाइल में तीन फर्स्ट क्लास थे। उन्होंने उषा को रसोई की हद से हमेशा दूर रखा। उसकी मां काम करते-करते थक जातीं, तो वे डबलरोटी से काम चला लेते। मां झींकतीं, 'तुम उषा को कहीं का न रखोगे।' वे गर्व से कहते, 'मेरी उषा रोटियां नहीं बेलेगी। वह रसोई में पड़े-पड़े पीली नहीं होगी। वह इन्दिरा गांधी बनेगी। विजयलक्ष्मी पंडित बनेगी।'

पर जब वही उषा न विजयलक्ष्मी पंडित बनी और न इन्दिरा गांधी, बल्कि उषा साहनी बनने पर आमादा हो गई, तो उसके पिता, 'पुन: मूषको भव' का बोझ भरा आशीष दे बिलकुल पीछे हट गए। उसकी मां को जरूर तसल्ली हुई कि लड़की अपनी सही जगह पर पहुंच गई, पर उनके भी मन में एक हाय-हाय रह गई कि लड़की अपनी बेवकूफी से पंजाब में जा पड़ी।

उसके परिवार में पंजाबी आदमी मूलत: झगड़ालू समझे जाते थे, झगड़ालू और थोथे। उसकी मां उन्हें दिल्ली का दलि-द्दर कहती थी। खुद उषा भी हमेशा पंजाबी लड़कियों को अपने से उथला मानती आई थी। जब-जब उसकी पहचान किसी पंजाबी लड़की से हुई, अकसर उसके उच्चारण से उकता कर वह उससे घनिष्ठ नहीं हो पाई। उसे याद है कुसुम खन्ना चाकू को काकू और रेणुकी को देवगी कहती थी। ऐसे मौके पर उषा अगर मौजूद होती, तो उसे बेसाख्ता हंसी आ जाती और इस बात का पूरा परिवार बुरा मानता।

पर ये लड़कियां अपनी पोशाक और उठान से उसे हमेशा चमत्कृत करती रहीं। उनके चुस्त चूड़ीदार पाजामे और कमीज देखकर उसे समझ न आता कि ये लड़कियां इन कपड़ों के अन्दर घुसती कैसे हैं और निकलती कैसे हैं। जेठा कॉलोनी में ऐसी दर्जनों लड़कियां थीं। उनके नाखून हमेशा चमकते रहते। उनके चेहरे देखकर लगता वे मक्खन और शहद से बनाए गए हैं। वे

जोगेन्दर माहनी की आँखों का पैनापन बढ़ता गया,
तुम जीवन में बहुत तकलीफ पाओगी।' अन्दर इतनी
हट के बावजूद उषा को हँसी आ गई, 'यह दूसरी बार
मिली है मुझे।' घड़ी की ओर देखते-न-देखते जोगेन्दर
'यह कोई वक्त नहीं है, यह कोई जगह नहीं है, वरना मैं
यदा कहता, 'मुझे तुम्हारी जरूरत है, हर जमीन पर। मैं
नहीं जानता पर जानना चाहता हूँ। जानने की यह भी
शुरुआत हो सकती है।"

उषा को विश्वास होते हुए भी आश्वस्त नहीं हो रही
गया इतनी अकस्मात् इतना सारा सुन्दर जीवन में
है।

उसने जोगेन्दर की ओर एक बार फिर देखने का
किया।

दृष्टि झेलते हुए जोगेन्दर ने कहा, 'ऐसे मौकों पर लड़कि
अपनी पवित्रता के बारे में एक विज्ञप्ति सुनाती हैं। आप
बारे में कुछ कहें।'

'ऊपर लिफ्ट को जरूरत पड़ सकती है। प्रेम और
सता दो अलग-अलग चीजें हैं, एक-दूसरे की विरोधी, फिर
तो शायद अभी प्रेम भी नहीं…।'

जोगेन्दर ने उसकी तरफ देखते-देखते, लिफ्ट का दरवा
बन्द किया और मुड़ गया।

उषा सम्मोहित वहीं-की-वहीं जमी रह गई। एक हाथ
अन्दर के दरवाजे के सींखचे पकड़े, एक हाथ लिफ्ट की दीवा
पर टिकाए। उसका वर्षों का अकेलापन कच्ची दीवारों-सा,
छोटे से अन्तराल में, भरभराकर ढह गया। इस विकट गर्मी
भी उसे लगा मानो वह अभी-अभी किसी जेल से छूट बाहर आ
है। देर तक वह यों ही खड़ी रही, बिना लिफ्ट का बटन दबाए
एक क्षण को भी इस स्थिति के औचित्य-अनौचित्य पर उसका
ध्यान नहीं गया।

काफी देर बाद उसने महसूस किया, उसका माथा औ
गर्दन पसीने से भर गई है। उसने लिफ्ट चलाई। मनःस्थिति
अब भी वही थी। लगता था, मानो लिफ्ट नहीं, वही ऊपर
ऊपर और ऊपर उड़ी चली जा रही है। अपने बिस्तर तक

जैसे हुआ पर पांव रखती पहुंच गई। समूची देह सलज्ज आवेगों का जलतरंग बनी जा रही थी। कुछ देर पहले की बोझिल नींद, बीते-जागते नशे में बदल गई थी। उसने अपनी आंखों पर हाथ फेरा, वहां अभी भी होठों की हरारत थी। वह खिड़की के पास खड़ी हो गई। सामने रजामाई टावर में दस बजे थे। रात पूरी सन्नाई नहीं थी। कभी कोई टैक्सी दन्नाती हुई निकल जाती, कभी कोई कार रुकती, लोग उतरते और अगल-बगल किसी-न-किसी पुख्ता मकान में दाखिल हो जाते। बड़ी दूर ग्वालियर सूटिंग का नियान साइन चमक रहा था, उससे ज़रा पास मरफी का। नीचे सड़क बहुत नीची लग रही थी, पर उपा ने आत्म-हत्या के बारे में नहीं सोचा। उसने अपने पहले प्रेम-प्रसंग के बारे में सोचा, जो अभी पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ था, लेकिन जो मृतप्राय था। प्रसंग उसके न चाहते हुए भी उसी की लापर-वाही से शुरू हो गया था और हफ्ते भर में ही उपा को अन्तिम सांसें लेता नज़र आ गया था।

प्रकाश सहाय इसी वर्ष उसके विश्वविद्यालय से एम० ए० हिन्दी कर रहा था। उसका उपा के घर आना-जाना था। उपा को ठीक-ठीक नहीं याद यह आना-जाना कैसे शुरू हुआ। प्रकाश की कविता विश्वविद्यालय की वार्षिक पत्रिका में छपी थी। यों तो अंग्रेज़ी और हिन्दी विभाग का विश्वविद्यालय में परस्पर कोई संवाद नहीं रहता था, लेकिन उपा हिन्दी में अधिक रुचि रखने के कारण अक्सर हिन्दी-विभाग के लोगों से मिलती-जुलती रहती थी। कई बार वह किसी अतिथि विद्वान का व्याख्यान सुनने भी वहां जा चुकी थी। प्रकाश सहाय से उसका परिचय वहीं हुआ था। उसे प्रकाश की कविता की कुछेक पंक्तियां अच्छी लगी थीं। उसने बताया था और प्रकाश उसके कमेन्ट्स से इतने उत्साह में आ गया था कि उसके साथ-साथ बस में दरियागंज तक चल पड़ा था। उपा को उसका यह उत्साह, उसकी स्फूर्ति, बात करने की तत्परता अच्छी लगी थी। अंग्रेज़ी-विभाग के लड़कों से यह लड़का एक अलग रंग का था, अधिक सहज और स्वाभाविक। समकालीन कविता में उसकी गहरी दिलचस्पी थी। वे कैनाज की लगड़ी कुर्सियों में बैठ हफ्ते में एकाध बार कविता पर बातचीत करने लगे थे।

कहता, 'अपना लायब्रेरी-कार्ड उधार दे सकोगी ?' दिल-
लाहट भरी मुसकराहट के साथ उषा सोचती, ये पटरी पर
के संसार, यह घिस-घिस कर गोल किया दृष्टिकोण, ये
स्पराजनित सावधानियां—यह लड़का उसे बाद मे भी
दे सकेगा, गर्भधारण और गर्भपात के सिवा। ऐसा बाएं
लो वाला प्यार उसे नागवार लगता और उसके चुम्बनों के
च वह निश्चल हो जाती, जड़ और ठंडी। उसे लगता प्रकाश
तजार कर रहा है मां-बाप, बहन-चाची सबकी तरफ से हरी
डी का, फिर एक दिन वह बाकायदा नीला, सूट पहनकर
आकर कहेगा, 'उषा ! मैं तुम्हें अपनी बनाना चाहता हूं,
लो !'

ये सब बातें एक-एक कर उसके सामने खुलती गई थीं और
पिछले दिनों से उषा को लगता रहा था कि वह कभी भी प्रकाश
के साथ, संवाद-हीनता की स्थिति मे पहुंच जाएगी। प्रकाश को
इसकी शायद चेतना भी न थी या शायद थी; लेकिन उसकी रूमा-
नियत और उसका गणित उसकी चेतना पर हावी रहते थे। जिस
दिन वह बम्बई के लिए चली, वह स्टेशन आया था। अपनी छोटी
बहिन को लेकर। पापा के इशारे पर वह सुराही का इन्तजाम
करने चला गया था। उसकी बहिन खिड़की से उषा से बार-
बार कहती रही थी, 'दीदी ! अगली बार हमें भी ले चलना
साथ।' सुराही भर कर प्रकाश ने उसकी बर्थ के नीचे रख दी
थी और उसने कहा था, 'वहां बहुत संभल कर रहना। मुझे
चिन्ता रहेगी।' गाड़ी चलने पर एक बार और उसने दोहराया,
'बहुत संभल कर रहना। जाते ही घर पर चिट्ठी डालना।'
उसे याद है, उसके पापा ने उससे सिर्फ इतना कहा था, 'प्रिंस
ऑफ वेल्स म्यूज़ियम जरूर देख आना। हो सके तो डॉ० मोती
चन्द्र से मिल लेना। चिट्ठी लिखना।'

यहां होस्टल मे सैटिल होने के बाद उसने घर पत्र लिखा
था; लेकिन प्रकाश को सोचकर भी नहीं लिख पाई। दो दिन
बाद उसने उसे तार कर दिया था, 'पहुंच गई, ठीक।'

प्रकाश का पत्र आया था। उसमें फिर संभलकर रहने की
ताकीद थी। उषा को पत्र पढ़ कर हंसी आ गई। छोटा-सा
खत था।

छोड़ आये थे। शनिवार को प्रोफेसर शुक्ल मिले थे। इ
इन्सटीट्यूट में तुम्हारे जाने से प्रसन्न थे। आजकल मु
शाम लायब्रेरी में बैठ रिसर्च-सब्जेक्ट ढूंढता हूं। नहीं
सोचता हूं, एक और एम० ए० कर डालूं!

कल घर गया था। ममी-पापा तुम्हारे बिना सुस्त
उन्होंने कहा है तुम टॉनिक लेना न भूल जाना। बहि
तुम्हें स्नेह भेजती हैं। बहुत संभल कर रहना।

तुम्
—प्र

उषा को लगा उसके छोटे भाई ने उसे खत भेजा है।
तरफ यह सादगी, दूसरी तरफ काव्यात्मक रूमानियत
आखिरी छोर पर यह चौंचक गणित, जिसके अन्तर्गत वह
कांटा ही ठीक करने में लगा हुआ था। यह एक ऐसा प्रेम
था जिसके दिन दहाड़े पकड़े जाने पर भी प्रेमी या प्रेमिका
पिटाई नहीं हो सकती। इसका उषा क्या जवाब देती?

इसीलिए आज का यह आकस्मिक चुम्बन किसी भी
विश्वासघात नहीं कहला सकता था। एक बार फिर आंखों
हाथ फेरते हुए उषा को जिज्ञासा हुई, क्या जोगेन्दर भी
क्या उसके बारे में सोच रहा होगा?

जोगेन्दर वहां से दादर नहीं गया। वह स्टेशन कैन्टीन
चाय पीने बैठ गया। इस समय ग्यारह बज गये थे, लेकिन
स्टेशन कैन्टीन में बदस्तूर सैंडविचेज, समोसे और बड़े बन-
कर आ रहे थे।

यहां वह अक्सर आ जाता था। चाय का प्याला दस
... में पन्द्रह पैसे के दो। इससे सस्ता चाय-नाश्ता
और कहीं नहीं था।

... रहा था, वह अन्दर-ही-अन्दर इतना आन्दोलि
... रे। पिछले कई मिनटों से वह लगातार अनकन
बार-बार उषा की अनाम देह का हलका स्पर्श
... कर रहा था। उसकी उन लहरी काली आंखों

ाने कितने सवाल फंसे थे। अगर इस लड़की के प्रति वह
महसूस करने की आजादी चाहता है, तो सबसे पहले उसे
सवालों के जवाब तैयार करने होंगे, ऐसा उसे लग रहा
, वह इतना जिम्मेदार बनना नहीं चाहता था। फिर भी
नी उत्तेजना के प्रति इस वक्त उसे अफसोस नहीं आश्चर्य
। इससे पहले लड़की को लेकर उसका अनुभव कसैला रहा
। एम० ए० के बाद, बेरोजगारी के दिनों में वह अठारह
क्टर की एक लड़की से उलझ गया था। वह प्रेम प्रसंग बड़ी
ौड़ी तरह खत्म हुआ था।

उन दिनों वह सारा दिन 'आवश्यकता है' कॉलम पढ़ा
रता था और अर्जियां भेजता। किरण बजाज बड़ी उम्मीद से
न्तजार करती कि उसका इन्टरव्यू होगा, वह चुन लिया
जाएगा, फिर बाकायदा विवाह होगा, पर या तो जोगेन्दर को
इन्टरव्यू के लिए बुलाया ही न जाता या जब बुलाया जाता,
वह पांचवां प्रत्याशी होता, जबकि जगहें चार होतीं। किरण
बजाज खोखे की चाय और चुम्बन के सहारे कब तक यौवन
बिताती। आखिर अगली गर्मियों तक उसने माता-पिता की
आज्ञा मानकर एक बलिष्ठ बारोजगार आर्मी कैप्टेन से शादी
कर ली और सुखमय जीवन बिताने हेतु जेवर-जरी से भरी एक
दिन देहरादून के लिए रुखसत हो गई। तभी से जोगेन्दर ने
नतीजा निकाला था कि कड़की में लड़की ज्यादा दिन नहीं
टिकती।

इसके बाद बहुत दिनों तक उसने नौकरी या छोकरी किसी
के लिए भी कोशिश नहीं की।

उन दिनों वह अपने को बड़ा त्रस्त पाता था। किसी
नौकरी का खत मिलने पर उसके पिता का नाम और पतों की
फेहरिस्त उसे देते, लेकिन किसी से मिलना उसे बड़ा विचित्र
और मूर्खतापूर्ण लगता। उसने पाया उसकी निष्क्रियता के प्रति
घर में एक 'पैनिक' फैलता जा रहा है। उसकी मां उसके पिता
के रिटायरमेंट की बात छेड़ने लगी थी; उन्हें रिटायर होने में अभी
सात साल थे। उसके पिता उसकी घिसी पैन्ट खुद पहन लेते।

जिस दिन घेड़िया कॉलिज का विज्ञापन उसने पढ़ा था
उसकी टेबिल पर सिर्फ एक पोस्टकार्ड पड़ा था। उसी पर उसने

महज अपनी योग्यताएं लिखकर भेज दी थीं। निवेदन और
जैसे शब्द अर्जी में कहीं नहीं थे। अन्त में अपना पता लिखा

जब इन्टरव्यू के लिए उसे बुलावा आया, उसे बड़ा आ
हुआ। उसकी माँ ने कहा, जब शहर की शहर में निकली
में उसे नहीं लिया गया, तो बम्बई तक का रेल-किराया
खर्च करने से क्या फायदा; लेकिन वह जिद करके चला
था।

यह तो उसे बाद में ही पता चला कि उसका चुनाव
इसलिए हो गया था, क्योंकि वह दो जोरदार प्रत्याशियों के
फंस गया था। नम्बर एक पर लक्ष्मण देशमुख था,
प्रिंसिपल सजातीय होने की वजह से लेना चाहता था।
तीन पर रंजना पारिख थी, जिसे मैनेजर सजातीय होने के
लेना चाहता था। बीच में दूसरे नम्बर पर जोगेन्दर
था। मजबूरन चयन-समिति ने तीनों नियुक्त कर लिए थे।
काम करते अभी उसे मुश्किल से तीन-साल हुए थे।
सामन्त ने सीनियर स्केल का चारा डालकर कई प्रवक्ता
को इस समर इन्सटीट्यूट में फंसा दिया था और खुद
बलेश्वर चले गए थे।

यह ड्यूटी उसने इसलिए भी मंजूर की थी, क्योंकि
गर्मियों में घर नहीं जाना चाहता था। घर से जुड़े हुए
बावजूद उसे वहां जाना एक फिजूल हरकत लगती थी।
अधिकांश दोस्त चण्डीगढ़ छोड़ चुके थे। जो वहां थे, वे
अलग दुनिया के भागीदार होते जा रहे थे। उसके घर के
पास की सड़कें कुछ इस तरह साफ और नई थीं कि उसे
पर सिगरेट भी कुचलकर फेंकते संकोच होता था। युनिव
के बगीचों में गुलाब कुछ इस तरतीब से लगे थे, पास कुछ
अनुशासन में सधी थी कि लगता था वहां माहौल फूलों
महक का नहीं डिटॉल की बू का है। लोगों के नाखूनों में
उतना ही मैल था, जितना मुजफ्फरनगर के रहने वालों
में हो सकता है; लेकिन वहां सनातन धर्म सेक्टर
एक-समान, सिर्फ नम्बरों की हेराफेरी।
में वह पैदा नहीं हुआ था। शुरू के सत्रह
में सामान की तरह पार्सल होता रहा

तकादों से तंग आकर अब उसके पिता ने एक प्राइवेट स्कूल में नौकरी कर ली थी।

उषा के बारे में वह कुछ नहीं जानता था। इसके अलावा कि क्लास में वह लेक्चर बहुत ध्यान से सुनती थी। जब बाकी छात्र सिर्फ उसकी तरफ ताक रहे होते, उषा, उसे महसूस होता, लेक्चर आंखों के रास्ते समझ रही है। उसे लगा था यह मुद्रा एक मूढ़ छात्र की नहीं है, बल्कि यह कभी भी असहमत होकर आक्रामक बन सकती है। ऐसा ही उस दिन हुआ भी था। तब साहनी को बुरा लगा था। तब साहनी को बुरा लगा था और अच्छा भी। पिछले महीनों में किसी भी क्लास में वह ऐसी स्थिति से नहीं गुजरा था। छात्र पेपरमैशी के बने घुग्घुओं की तरह उसे सुनते रहते, बिना किसी हरकत के। कभी-कभी वह जानबूझकर क्लास में कोई गलत तथ्य या गलत अर्थ बता जाता। छात्रों पर उसका कोई असर न होता। वे निर्विकार भाव से उसे सुनते और घड़ी और लड़कियों की ओर देखते।

इस समय वह बार-बार अपनी तकलीफदेह तनखाह के बारे में सोच रहा था और उषा के बारे में। उसे आश्चर्य था कि इतनी जल्दी वह इन दोनों बातों को मिला क्यों रहा है? यह जाहिर है कि कुछ महीने पहले अगर उषा उसे मिली होती, तो लड़की के स्तर पर वह उसे बहुत पहले खारिज कर चुका होता। इस वक्त उषा का आकर्षण उसे संस्कार नहीं, संवेदना के स्तर पर महसूस हुआ था। जोगेन्दर को उसका पैनापन, उसके व्यक्तित्व में निहित असहमति, हर वक्त एक तरह की लड़ंत तैयारी, चकित और प्रभावित कर गई थी। पर नतीजे अभी बहुत दूर थे। आगे का कोई नक्शा उसके दिमाग पर नहीं खिंचा था।

यह नक्शा तो अगले दिन ही कुछ साफ हुआ, जब उसने पाया सुबह दस बजे ही उषा खड़ी बड़े सचेत ढंग से स्टाफ रूम में झांक रही है और साथ ही कॉरीडोर से बाहर मैदान की ओर देखने का अभिनय कर रही है। ऐश रंग की साड़ी में इस लड़की का ऊल-जलूल दुबलापन देख जोगेन्दर को आश्चर्य हुआ कि रात वह उसे इस कदर आकर्षक कैसे लग गई। वह उधर से गुजरा तो उषा निःशब्द उसके साथ हो ली।

गहज अपनी योग्यताएं लिखकर भेज दी थीं। लिंक
जैसे शब्द अर्जी में कहीं नहीं थे। अन्त में अगर पत
जब इन्टरव्यू के लिए उसे बुलावा आया, उसे अ
हुआ। उसकी माँ ने कहा, जब शहर की शहर में नि
में उसे नहीं लिया गया, तो बम्बई तक का रेल कि
खर्च करने से क्या फायदा; लेकिन वह जिद करके
था।

यह तो उसे बाद में ही पता चला कि उसका चु
इसलिए हो गया था, क्योंकि वह दो जोरदार प्रत्याशि
फंस गया था। नम्बर एक पर लक्ष्मण देशमुख
प्रिंसिपल सजातीय होने की वजह से लेना चाहता था
तीन पर रजना पारिख थी, जिसे मैनेजर सजातीय होने
लेना चाहता था। बीच में दूसरे नम्बर पर इंजीनि
था। मजबूरन चयन-समिति ने तीनों नियुक्त कर लिए
काम करते अभी उसे मुश्किल से तीन-माह हुए थे। नि
सामन्त ने सीनियर स्केल का चारा डालकर कई अ
को इस समर इन्सटीट्यूट में फंसा दिया था और ख
बखेश्वर चले गए थे।

यह ड्यूटी उसने इसलिए भी मंजूर की थी, क्यों
गर्मियों में घर नहीं जाना चाहता था। घर से जुड़े हुए
बावजूद उसे वहां जाना एक फिजूल हरकत लगती थी।
अधिकांश दोस्त चण्डीगढ़ छोड़ चुके थे। जो वहां थे, वे
अलग दुनिया के भागीदार होते जा रहे थे। उनके घर के
पास की सड़कें कुछ इस तरह साफ और नई थीं कि उन
पर सिगरेट भी कुचलकर फेंकते संकोच होता था। दुनि
के बगीचों में गुलाब कुछ इस तरतीब से लगे थे, घास
अनुशासन में लगी थी कि लगता था वहां माहौल फूलों
महक का नहीं डिटॉल की बू का है। लोगों के नाखूनों में
उतना ही मैल था, जितना मुजफ्फरनगर के रहने वाले
नाखूनों में हो सकता है, लेकिन वहां दनादन लॉरिन सेक्टर
रहे थे, परिष्कृत, एक-समान, सिर्फ नम्बरों की हेराफेरी।

इस शहर में वह पैदा नहीं हुआ था। शुरू से सगड़ का
वह पिता के तबादलों में सामान की तरह पारगम होता रहा था।

बादलों से तंग आकर अब इसके पिता ने एक प्राइवेट स्कूल में नौकरी कर ली थी।

उषा के बारे में वह कुछ नहीं जानता था। इसके अलावा कि क्लास में वह लेक्चर बहुत ध्यान से सुनती थी। जब बाकी छात्र सिर्फ उसकी तरफ ताक रहे होते, उषा, उसे महसूस होता, लेक्चर आंखों के रास्ते समझ रही है। उसे लगा था यह मुग्ध एक मूढ़ छात्र की नहीं है, बल्कि यह कभी भी असहमत होकर आक्रामक बन सकती है। ऐसा ही उस दिन हुआ भी था। तब साहनी को बुरा लगा था। तब साहनी को बुरा लगा था और अच्छा भी। पिछले महीनों में किसी भी क्लास में वह ऐसी स्थिति से नहीं गुजरा था। छात्र पेपरमैशी के बने घुग्घुओं की तरह उसे सुनते रहते, बिना किसी हरकत के। कभी-कभी वह जानबूझकर क्लास में कोई गलत तथ्य या गलत अर्थ बता जाता। छात्रों पर उसका कोई असर न होता। वे निर्विकार भाव से उसे सुनते और घड़ी और लड़कियों की ओर देखते।

इस समय वह बार-बार अपनी तकलीफदेह तनखाह के बारे में सोच रहा था और उषा के बारे में। उसे आश्चर्य था कि इतनी जल्दी वह इन दोनों बातों को मिला क्यों रहा है? यह जाहिर है कि कुछ महीने पहले अगर उषा उसे मिली होती, तो लड़की के स्तर पर वह उसे बहुत पहले खारिज कर चुका होता। इस वक्त उषा का आकर्षण उसे संस्कार नहीं, संवेदना के स्तर पर महसूस हुआ था। जोगेन्दर को उसका पैनापन, उसके व्यक्तित्व में निहित असहमति, हर वक्त एक तरह की लड़ंत तैयारी, चकित और प्रभावित कर गई थी। पर नतीजे अभी बहुत दूर थे। आगे का कोई नक्शा उसके दिमाग पर नहीं खिंचा था।

यह नक्शा तो अगले दिन ही कुछ साफ हुआ, जब उसने पाया सुबह दस बजे ही उषा खड़ी बड़े सचेत ढंग से स्टाफ रूम में झांक रही है और साथ ही कॉरीडोर से बाहर मैदान की ओर देखने का अभिनय कर रही है। ऐश रंग की साड़ी में इस लड़की का ऊल-जलूल दुबलापन देख जोगेन्दर को आश्चर्य हुआ कि रात वह उसे इस कदर आकर्षक कैसे लग गई। वह उधर से गुजरा तो उषा निश्शब्द उसके साथ हो ली।

बात उन्होंने बाहर आकर ही की। उस समय भी कुछ छात्र कम्पाउण्ड में टहल रहे थे।

ये महीने के आखिरी हफ्ते के दिन थे। जोगेन्दर बोला, 'मैं तुम्हें पांच सितारों वाले रेस्तरां में तो नहीं ले जा सकूंगा, पर रॉयल कैफे की कड़क चाय चलनी हो तो पिलाऊं।'

वहीं बैठकर करीब से जोगेन्दर ने महसूस किया था, प्रसाधन से उषा के चेहरे की शोभा बढ़ी नहीं वरन् घट रही है कि उसका स्वास्थ्य अतिरिक्त निराशाजनक है कि उसकी समस्त संवादात्मक तेजी व्यक्तित्व का एक प्रिय अंग होने के साथ-साथ क्षतिपूर्ति का काम भी करती है।

उषा ने उसके अन्दर की हरकत ताड़ ली। वह अचानक अस्वाभाविक रूप से चुप हो गई।

जोगेन्दर को अपनी गलती पता चल गई। धीरे से बोला, 'सबसे पहले तुम्हारी सेहत सुधारनी होगी।'

क्षण भर पहले की उषा की सतर्कता डगमगा गई, फिर भी वह बोली, 'यू डोन्ट हैव टु इफ यू डोन्ट।'

दोस्ती इसी तरह लड़खड़ाती चलती रही जब तक कि एक दिन उषा उसके साथ श्रीकृष्ण लॉज नहीं चली गई। शारीरिक स्तर पर परितोष दोनों के लिए ही एक विस्मय की तरह आया। जरूरत-दर-जरूरत वे एक दूसरे के आगे खुलते गए। दोनों को ही लगा फिलहाल वे और कुछ नहीं चाहते। समस्त विश्व-साहित्य एक ओर खिसका वे इस देह-नय को समर्पित हो गये।

नतीजा यह कि बचे-खुचे दस दिन बाद जब उनके अलग होने का वक्त आया, वे एक दूसरे के बारे में शरीर और डाक-पते के अलावा बहुत ज्यादा जानकारी हासिल नहीं कर पाये थे। ऐसी शुरूआत के बाद इसकी गुंजाइश भी नहीं रह जाती थी। देखा जाए तो वे एक-दूसरे का स्वभाव अभी नहीं समझे थे। अपने से इतर जिज्ञासा और दिलचस्पी दोनों ही की सीमित थीं। बस एक बात तय थी; बहुत जल्द शादी चाहते थे।

यह चमकीली साड़ी, ये कोरी अटैचियां, ये थ्री टायर के तख्ते इसी अप्रासंगिक शुरूआत की एक प्रासंगिक परिणति थे।

जोगेन्दर खुश था। उषा भी, लेकिन संवेदनशील होने के नाते दोनों ही उस तड़फड़ाहट को गायब या कुछ कनफ्यूज्ड थे। वह बेचैनी जो प्रेम के दिनों में साथ रहने पर भी बनी रहती थी, पता नहीं कहां खो गई थी। जोगेन्दर को लगा उषा का लिबास इसके लिए जिम्मेदार है। बम्बई जाकर वह उसे कुछ सोबर कपड़े खरीदवा देगा। अपने घर से उषा सादे; लेकिन सुन्दर कपड़े लाई थी। जोगेन्दर के घरवालों ने वे सब नापसन्द कर काफी रुपये खर्च कर उसके लिए नए सिरे से वार्डरोब बनाई थी। उसे लिपस्टिक वगैरह लगाने की भी सलाह दी थी, जो गनीमत है उषा ने नहीं मानी, फिर भी उषा में नवोदित संकोच उसके व्यक्तित्व को एक कन्नी दबाए दे रहा था। जोगेन्दर को इसका अहसास था; लेकिन वह उषा को यह बता कर तकलीफ नहीं देना चाहता था।

पिछले कुछ दिन उसने उषा को नितान्त घरेलू पृष्ठभूमि में देखा था। शायद वह साथ न होती तो जोगेन्दर घर में इतने लम्बे समय के लिए रुकता ही नहीं। मां-बाप का वह कभी भी प्यारा बेटा नहीं रहा। अकसर उसकी मां उससे दुखी ही रही थी बल्कि जिस स्तर पर इतनी जल्दी मां ने उषा को घर में सम्मिलित कर लिया उस स्तर पर उसे कभी नहीं किया था; लेकिन जोगेन्दर अब वापिस जाना चाहता था।

अब से कुछ घण्टों बाद की सुबह बम्बई में उगनी थी, जहां बेतहाशा दौड़-धूप के बाद जोगेन्दर ने रहने के लिए एक नहीं, एक—बटे दो कमरा ढूंढा था। कमरे के एक चौथाई हिस्से में पार्टिशन लगाकर मकान मालिक ने एक हिस्सा ताला लगाकर डाल दिया था कि उसका लड़का और बहू पेनांग से जब आएंगे तब वह काम आएगा। 'वे कभी न लौटें,' जोगेन्दर ने सुनकर सोचा था। थोड़ी-सी बदरंग इमारत की तीसरी मंजिल पर यह कमरा था, जो हिस्सा बन्द था, खिड़की उसी हिस्से के साथ बन्द हो गई थी। रोशनदान के अलावा हवा जाने का और कोई रास्ता नहीं था। बिजली की फिटिंग थी, पर बल्ब नहीं था: कमरे से जुड़ा हुआ एक सकरा दरवाजा था, जो गुसलखाने में खुलता था। पाखाने के बारे में पूछताछ करने पर मकान मालिक जोगेन्दर को दरवाजे से बाहर लम्बी गैलरी के आखिरी

[illegible] मंदिर [illegible] की [illegible] है बस [illegible]
जोगेन्दर का दिल बेहद प्रसन्न हो गया। पूरे 15'×10'
कमरे में ने कहा [illegible], क्या कहने ! दीवारों पर [illegible]
पेंट की एक परत बाकी थी। फर्श पर कुछ और [illegible]
में [illegible] हुई। इसे तो [illegible] बाकी से बेहतर [illegible]
जोगेन्दर ने सोचा।

लेकिन उषा बड़े उत्साह में थी। आखिर वह पहली [illegible]
जोगेन्दर के साथ आने पर थे, अपनी तरह से [illegible]
आई थी। [illegible] की चहार के बावजूद वह जोगेन्दर के [illegible]
कदम 'धाराकर' [illegible] दोनों सीढ़ियाँ चढ़ गई। [illegible]
कर वह कुछ देर को हक्का-बक्का खड़ी हो गई, लेकिन [illegible]
उसने जोगेन्दर की ओर देखा तो वह एकदम संभल गई। [illegible]
दिया मुस्कराते हुए बोली, 'अब तुम जरा बैठ जाओ। मैं [illegible]
सब ठीक किए देती हूँ।'

रोशनदान से पता चल रहा था, बाहर इस कमरे [illegible]
अन्दर की हालत देख कर उषा ने पाया बिस्तर बिछाने के लि[illegible]
सबसे पहले झाड़ू और झाड़न चाहिए। जोगेन्दर उसे अतिरिक्त [illegible]
वहां ही छोड़ फौरन नीचे चला गया था, बस्ते लेने। उषा [illegible]
कमरा अच्छी तरह देखते हुए गुसलखाना देख आई। वहां की
छोटी खिड़की से आती धूप और रोशनी उसे वरदान-सी लगी।

जोगेन्दर जब बस्ता लेकर लौटा तो उषा की हिम्मत नहीं
हुई कि वह उसे फिर नीचे दौड़ा दे, उसे लगा इतने नये-नये
पति से उसे जीवन झाड़ू की फ़रमाइश से शुरू नहीं करना
चाहिए। लिहाजा थोड़ी रेजगारी मुट्ठी में दबा वह खुद नीचे
उतर गई।

किराने की दुकान पर झाड़ू थी लम्बे से पॉलिथीन में
लिपटी और झाड़न भी।

उषा ने दोनों की कीमत पूछी तो वह असमंजस में पड़ गई।

झाड़ू दो रुपये की थी और झाड़न सवा रुपए का।
उसने मुट्ठी खोल, पैसे गिने। सिर्फ साढ़े दस आने थे।
दुकानदार से कहा, 'अभी आती हूं।' कह कर फिर ऊपर चल दी।

झाड़ू-झाड़न अभियान में वह इतनी थक गई कि जब वह अन्ततः ऊपर पहुंची, उसे सफाई की नहीं, आराम की इच्छा हो रही थी।

लेकिन जोगेन्दर इस वक्त जोश में था।

'इधर देखो उषा! कितनी सारी जगह है।'

उषा ने देखा, गुसलखाने के ऊपर पड़छती जैसी जगह थी, वहां अक्सर सामान स्टोर किया जाता है।

'यहां हम अपने सूटकेस, बिस्तरबन्द, सब रख लेंगे।' जोगेन्दर बोला।

'फिर रह ही क्या जाएगा।' उषा ने कहा और कहने के फौरन बाद डर गई।

जोगेन्दर ने उससे बहुत पहले ही कह दिया था, उसे चीजों के प्रति अफसोस का अन्दाज नागवार मालूम देता है।

"क्यों? तुम और मैं। क्या काफी नहीं है?' जोगेन्दर उसके एकदम पास आकर खड़ा हो गया और अपने काफी होने का प्रमाण भी उसने तत्काल दे डाला।

चाय की जरूरत महसूस होते ही उन्हें अहसास हुआ उनके पास बर्तन नहीं है और न ही स्टोव। सौ रुपये का एक नोट जेब में डाल वे निकले दादर, कि ढेरों बर्तन, क्राकरी और स्टोव लेकर टैक्सी में वापिस आ जाएंगे।

बड़े आत्मविश्वास से वे मरोळ भंडार में घुसे। जोगेन्दर ने इशारे से सुन्दर-से-सुन्दर बर्तन निकलवाए, लेकिन जल्द ही दोनों ठंडे हो गए। कीमतों के कुचक्र से यह उनका पहला साबका था। इतने पैसों में वे स्टोव सहित सिर्फ चाय-नाश्ते के बर्तन खरीद सकते थे, तब उषा सौन्दर्यबोध रूमाल में ऐंठ, शुद्ध कर्तव्योंत पर उतर आई थी, लेकिन अनुभव के अभाव में उन्होंने अलमूनियम की कढ़ाई, स्टील का चिमटा और पीतल की परात खरीद डाली। टी-सेट की जगह उषा ने कांच के ग्लास और साधारण-

नी अकेली केतली ली थी।

स्टोव, चीनी चायपत्ती वगैरह खरीदने के बाद उनके प
पांच का सिर्फ एक साबुत नोट बचा था और थोड़ी रेजगारी।

सामान से लदे-फंदे वे बस की कतार में खड़े हो गए।

वहीं से गुजरते उन्हें जोगेन्दर ने देखा था। वे दो थे, मट
रंग की सस्ती बुशशर्ट और जीन्स पहने। वे कबूतर खाने
पास रुक गए।

हमेशा की तरह उस वक्त भी बे-हिसाब कबूतर वहां दान
चुग रहे थे। जोगेन्दर ने जोर से पुकारा, 'आतिश!'

उन दोनों ने उधर देखा, फिर लम्बे-लम्बे डग भरते चले
आए।

उषा ने गौर किया, उनकी शक्लें एकदम अलग थीं, जबकि
उनके कपड़े लगभग एक से।

एक ने जोगेन्दर के कन्धे पर जोर से हाथ मारा, 'आ गए?'

दूसरा खुश, उषा को ध्यानपूर्वक देख रहा था।

ये दोनों जोगेन्दर के हम-पेशा नहीं लगते थे, फिर भी उषा
को लगा, जगन उनको लेकर जोश में था।

'चलो, यार! मामाकांधे के यहां चा पी जाए।' एक
बोला।

'चाय तो अब घर पर ही पियेंगे।' जोगेन्दर प्रसन्न होकर
बोला।

आतिश नाम के आदमी ने ध्यान से उषा को देखा।

'आदाब।' वह बोला।

फिर जगन से कहा, 'और मैं सोच रहा था, तुम सलवार-
कमीज में लैस ढाई मन की धोबन ले आओगे।'

जगन ने उषा का बाकायदा परिचय नहीं कराया था। जिस
तरह वे दोनों धसने के लिए फौरन क्यू में लग गए थे, उससे
उषा को उलझन महसूस हुई। अभी तो घर में चटाई तक नहीं
थी। कहां उन्हें बैठाएगी। वह जोगेन्दर से कुछ पूछना चाहती
थी, पर जोगेन्दर ध्यान से दूर आती बसों के नम्बर पढ़ने की
कोशिश कर रहा था।

आखिर एक नम्बर बस आ गई।

सारा सामान उन तीनों ने थाम उषा को जबरदस्ती

री डेक पर भेज दिया। वहां एक जगह खाली थी। ऊपर ढते समय डरी। उससे भी ज्यादा उतरते समय।

घर आकर वे तीनों जमीन पर बिछे बिस्तर पर आराम ौर बेफिक्री से बैठ गये। उषा ने चाय की तैयारी एक कोने में ी। मिट्टी का तेल आतिश कढ़ाई में डलवा लाया, उनके पास िल नहीं थी।

चाय के साथ ही बहस छिड़ गई थी।

जोगेन्दर ने पूछा, 'क्यों जवाब आया?'

'इसका मतलब तुम्हें उम्मीद थी जवाब आएगा। साले, जवाब कभी कहीं से नहीं आएगा। चाहे तुम इस आतिश पर पचास रुपये डाक-खर्च कर दो।'

वैजनाथ बोला, 'ऐसा सोचते हो इसीलिए तुम्हारा कोई काम नहीं बनता।'

आतिश को तैश आ गया, 'होता तू मेरी जगह तो बताता। आजादी को अठारह साल हो गए, हमारे लिए इस बीच क्या हुआ? सिर्फ जाकिर हुसैन का पुतला बनाकर बैठा लेने से हमारी मुश्किलें खत्म नहीं हो जाती। सिर्फ अलीगढ़ यूनिवर्सिटी खोल देने से हम तीन करोड़ मुसलमानों को धन्धा नहीं मिल जाता, जो यतीमों की तरह आजाद हिन्दुस्तान में छूट गये हैं, कोठरी और कबाब बेचने के लिए।'

'हमारी यूनिवर्सिटियों से निकले कितने लाख विद्यार्थी बेरोजगार हैं! इसकी तुम्हें खबर है? ऐसा तो नहीं कि हिन्दुओं में बेरोजगारी नहीं।' जोगेन्दर बोला।

'उतर आये न तुम सफाई पर। हिन्दुओं में बेरोजगारी है, तो कोई लाला करसूलाल उन्हें मुनीम तो रख लेता है। वह ठेला लगाकर केला तो बेच लेता है। यहां तो साला वी० टी० पर छाते में रुमाल की दुकान लगाई थी, वह भी बन्द हो गई। उस रोज बालू के ठेलेवाले का ग्राहक से झगड़ा हुआ, पुलिस वाले ने आकर मेरी दुकान फेंक दी। उस ठेलेवाले ने झट पांच का नोट टिका दिया। मैं मारा गया मुफ्त में। पच्चीस रुपये का माल लुटा, सत्रह रुपये का छाता।'

बात उसकी सही थी। बारोजगार, प्रतिष्ठित मुसलमान उंगलियों पर गिने जा सकते थे। आई० ए० एस० में वे नहीं के

पांच का सिर्फ एक साबुत नोट बचा था और थोड़ी रेजगारी।
सामान से लदे-फंदे वे बस की कतार में खड़े हो गए।
वहीं से गुजरते उन्हें जोगेन्दर ने देखा था। वे दो थे, गहरे रंग की सस्ती बुशशर्ट और जीन्स पहने। वे कबूतर खाने के पास रुक गए।
हमेशा की तरह उस वक्त भी बे-हिसाब कबूतर वहां दाना चुग रहे थे। जोगेन्दर ने जोर से पुकारा, 'अतिश!'
उन दोनों ने उधर देखा, फिर लम्बे-लम्बे डग भरते चले आए।
उषा ने गौर किया, उनकी शक्लें एकदम अलग थीं, जबकि उनके कपड़े लगभग एक से।
एक ने जोगेन्दर के कन्धे पर जोर से हाथ मारा, 'आ गए?'
दूसरा खुश, उषा को ध्यानपूर्वक देख रहा था।
ये दोनों जोगेन्दर के हम-पेशा नहीं लगते थे, फिर भी उषा को लगा, जगन उनको लेकर जोश में था।
'चलो, यार! मामावाले के यहां चा पी जाए। एक बोला।
'चाय तो अब घर पर ही पियेंगे।' जोगेन्दर प्रसन्न होकर बोला।
आतिश नाम के आदमी ने ध्यान से उषा को देखा।
'आदाब।' वह बोला।
फिर जगन से कहा, 'और मैं सोच रहा था, तुम सलवार-कमीज में लैस ढाई मन की धोबन ले आओगे।'
जगन ने उषा का बाकायदा परिचय नहीं कराया था। जिस तरह वे दोनों चलने के लिए फौरन क्यू में लग गए थे, उससे उषा को उलझन महसूस हुई। अभी तो घर में चटाई तक नहीं थी। कहां उन्हें बैठाएगी? वह जोगेन्दर से कुछ पूछना चाहती थी, पर जोगेन्दर ध्यान से दूर आती बसों के नम्बर पढ़ने की कोशिश कर रहा था।
आखिर एक नम्बर बस आ गई।
सारा सामान उन तीनों ने थाम उषा को जबरदस्ती

चढ़ते समय डरी। उससे भी ज्यादा उतरते समय।

घर जाकर वे तीनो जमीन पर बिछे बिस्तर पर आराम और बेफिक्री से बैठ गये। उषा ने चाय की तैयारी एक कोने में की। मिट्टी का तेल आतिश कढाई मे डलवा लाया, उनके पास बोतल नहीं थी।

चाय के साथ ही बहस छिड़ गई थी।

जोगेन्दर ने पूछा, 'क्यों जवाब आया?'

'इसका मतलब तुम्हें उम्मीद थी जवाब आएगा। साले, जवाब कभी कहीं से नहीं आएगा। चाहे तुम इस आतिश पर पचास रुपये डाक-खर्च कर दो।'

वैजनाथ बोला, 'ऐसा सोचते हो इसीलिए तुम्हारा कोई काम नहीं बनता।'

आतिश को तैश आ गया, 'होता तू मेरी जगह तो बताता। आजादी को अठारह साल हो गए, हमारे लिए इस बीच क्या हुआ? सिर्फ जाकिर हुसैन का पुतला बनाकर बैठा लेने से हमारी मुश्किलें खत्म नही हो जाती। सिर्फ अलीगढ़ यूनिवर्सिटी खोल देने से हम तीन करोड़ मुसलमानों को धन्धा नहीं मिल जाता, जो यतीमों की तरह आजाद हिन्दुस्तान में छूट गये हैं, नौकरी और कबाब बेचने के लिए।'

'हमारी यूनिवर्सिटियों से निकले कितने लाख विद्यार्थी बेरोजगार हैं! इसकी तुम्हें खबर है? ऐसा तो नहीं कि हिन्दुओं में बेरोजगारी नही।' जोगेन्दर बोला।

'उतर आये न तुम सफाई पर। हिन्दुओं में बेरोजगारी है, तो कोई लाला कल्लूलाल उन्हें मुनीम तो रख लेता है। वह ठेला लगाकर केला तो बेच लेता है। यहां तो साला वी० टी० पर छाते में रुमाल की दुकान लगाई थी, वह भी बन्द हो गई। उस रोज बाजू के ठेलेवाले का ग्राहक से झगड़ा हुआ, पुलिस वाले ने आकर मेरी दुकान फेंक दी। उस ठेलेवाले ने झट पांच का नोट टिका दिया। मैं मारा गया मुफ्त मे। पच्चीस रुपये का माल लुटा, सत्तह रुपये का छाता।'

बात उसकी सही थी। बारोजगार, प्रतिष्ठित मुसलमान उंगलियों पर गिने जा सकते थे। आई० ए० एस० में वे नहीं के

चलाकर थे। आज वैसाखी में उन्हें शंका की दृष्टि से देखा जाता था क्योंकि बैनर के सांस्कृतिक संस्थानों में वे कहीं किसी हैसियत से नहीं जाने जाते थे। मोहभंग, शायद तभी से उनमें सहानुभूति, उनकी संख्या को देखते हुए स्वाभाविक थी। जो दिखे हुए मुसलमान थे, वे 'सरकारी मातहतों' की तरह रहते. लेकिन डरे-डरे। उन्हें लगता कि कहीं किसी वजह उन पर शक न हो जाए या उनके खिलाफ केस न बन जाये।

'अपने को मुसलमान मान कर हम सजगता पर मोहर ही लगाते हैं।' जोगेन्दर ने चाय का प्याला खाली करके कहा।

'अगर हम हिन्दू, हिन्दू होकर सोचें, तो आप हमें जनसंघी कहते हैं।' बैजनाथ बोला।

आतिश भयंकर रूप से असहमत था, पर बोला, 'पैसा भी के सामने मैं तुम लोगों को जवाब नहीं दे सकता। किसी रोज बिजपोलकी के पायदाने हथेली में सब बताऊंगा।'

उन्होंने एक-एक चाय और पी पर भूख नहीं दबी, फिर वे डबलरोटी और बिस्कुटों पर टूट पड़े थे। मक्खन नहीं था, टमाटर की चटनी लगा कर डबलरोटी खत्म की गई। तब बैजनाथ ने कहा, 'अरे, हमें आए तीन घंटे हो गए। यार, आतिश! ये नये कबूतर हैं, मन-ही-मन गाली दे रहे होंगे।'

'अच्छा, यार! कल मिलेंगे। मुझे देखते ही मत पूछना जवाब आया। मुझे गुस्सा आ जाता है।'

आतिश बैजनाथ के साथ चला गया।

ये दोनों काम की तलाश में भटक रहे थे, आतिश और बैजनाथ।

बैजनाथ की हालत उतनी खराब नहीं थी। वह सिर्फ बी० ए० पास था, पर उसके सिर पर कमाऊ बाप का हाथ था।

आतिश अकेला था। आजमगढ़ के जिस मियां मोहल्ले में वह अपना घर-बार छोड़ आया था, वहां उस जैसे सभी लोगों के लिए धक्के-ही-धक्के थे। जब वह एम० ए० पूर्वार्द्ध में था, उसके बाप की मौत हो गई थी। पैसे की तंगी में मजबूरन उसे पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी। बाप उसके लिए टूटा-फूटा, छोटा-सा — छोड़ गया था। बालों की एक निहायत बदशक्ल दुकान,

जो गिरवी पड़ी थीं। एक सौतेली माँ और चार छोटी बहनें। बाप के मरते ही पट्टीदार बनिए ने दुकान सील करवा दी। कानूनी लड़ाई के लिए आतिश के पास न वक्त था न पैसा। उसने दोस्तों से सुना था बम्बई कॉस्मोपॉलिटन शहर है, वहाँ उसका मुसलमान होना उसे नहीं सताएगा। पिछले चार सालों से वह यहाँ लोकलों के आफिसरों के, दुकानों के धक्के खा रहा था। अब तक दर्जनों किस्म के काम कर चुका था, रद्दी खरीदने से लेकर रूमाल बेचने तक।

बल्कि बीच में उसने नाजायज शराब की दलाली भी शुरू की। दिन के सिर्फ दो घंटे माल पहुँचाने में लगते थे और आमदनी अच्छी लेकिन उसने पाया उसमें पता नहीं ऐसी क्या खासियत थी कि पुलिस को हर वक्त उस पर शक रहता। जिस समय उसके पास माल न होता उस वक्त भी वे उसे धर दबाते। एक बार दो रुपये देकर एक कान्स्टेबल से पिंड छुड़ाते हुए उसने कहा था, 'भाई जान ! आप कैसे कह सकते हैं मैं बूटलेगर हूँ ?'

कांस्टेबल ने जवाब दिया, 'शक्ल से ही मुसलमान लगते हो, कहने की क्या जरूरत है। काफिर कहीं के !'

बेवकूफी में यह बात आतिश ने अपने सेठ सोराब जी को बता दी थी। उन्होंने उसी वक्त उसका हिसाब कर दिया।

अगला धंधा ढूँढने से पहले आतिश ने अपनी पतली, बाँकी मूँछें मुँड़ा ली थीं और चिकन का कुर्ता पाजामा पहनने की जगह जीन्स और टी-शर्ट का प्रबंध कर लिया।

जोगेन्दर को वह लिबर्टी पर मिल गया 'खानदान' की टिकटें ब्लैक करते। टिकट खिड़की बंद हो चुकी थी और आतिश लोगों के कान में फुसफुसा रहा था, 'तीन का सात, तीन का सात।'

जोगेन्दर ने कौतुकवश पूछ लिया था, 'फिल्म देखी भी है या यों ही चिल्ला रहे हो ?'

आतिश ने कहा था, 'फिलम देखेंगे कि धंधा करेंगे ?'

फिल्म देखकर जब सवा नौ बजे जोगेन्दर बाहर निकला, उसने देखा आतिश अगले शो की टिकटें ब्लैक कर रहा है। जोगेन्दर ने उसके पास जाकर कहा, 'तीन की सात नहीं, डेढ़ कहो। खेल एकदम खराब है।'

आतिश गड़बड़ा गया था, 'खोटी मत करो सेठ। धंधे का टाइम है।'

पर उस शो की उसकी सिर्फ तीन टिकटें बेची गईं। बाकी उसे खिड़की वाले सेठ को वापिस करनी पड़ी थीं। सेठ ने यह नहीं सोचा कि आज न इतवार है न शनिवार, फिर बरसाती मौसम और आखिरी शो। उसने आतिश को पुचकार दिया।

पस्त-सा आतिश सामने चाय दुकान में चला गया। वहां जोगेन्दर दोसे का आखिरी टुकड़ा साम्भर में डुबोकर खा रहा था।

आतिश ने उसके पास आकर कहा, 'आपने टोक लगा दी। धन्धा खोटी हो गया।'

जोगेन्दर को अफसोस हुआ। उसका मतलब यह नहीं था। उसने आतिश को चाय पिलाई।

कुछ ही देर में जोगेन्दर ने उसका ओढ़ा हुआ मवालीपन पहचान लिया। वह निहायत अभ्यागतीय लहजे में समझाने लगा, 'यह धन्धा नहीं जालसाजी है, तू कभी भी गिरफ्तार हो सकता है।'

आतिश फुफकार बोला, 'जेल जाना काम मांगने से ज्यादा इज्जतदार होगा।'

'वहां से बाहर आकर काम ढूंढना और मुश्किल हो जाएगा।' जोगेन्दर ने कहा।

आतिश चुप हो गया, लेकिन आश्वस्त नहीं।

उसने डेढ महीने पहले यह धन्धा शुरू किया था। डेढ़ महीने पहले वह सारे शहर का चक्कर काट चुका था। चपरासीगिरी तक के लिए तैयार, लेकिन बिना वाकफियत के कोई उसे रखने को तैयार न हुआ। आखिर जब बूटबंदिय में असफल हो गया, तो चाल के दो छोकरों के साथ मैली पैंट और बड़ी हजामत के साथ वह लिबर्टी पहुंच गया।

लम्बी बहस और नोंक-झोंक के बाद जोगेन्दर उसका यह काम छुड़ा पाया था। वह चाहता था आतिश को कहीं नौकरी जाए। स्कूल, दफ्तर, दुकान, कहीं भी। उसने अपने सह

योगियों से पूछताछ की, तब तक कोई ट्यूशन का ही जुगाड़ हो जाए। हर जगह अड़चन थी। लड़कियों के लिए मेल ट्यूटर रखते अभिभावक घबराते थे और लड़के ट्यूटर घर पर बुलाने की बजाय खुद कोचिंग क्लासों में चले आते थे, फिर आतिश का कहना था इन चार सालों में वह अपना पढ़ा-लिखा सब भूल गया है, क्या खाक पढ़ाएगा ?

दो-चार महीने आतिश ने जोगेन्दर की नाकामयाब कोशिश देखी, फिर हल्लाकर कमीशन पर प्रकाश इंक पैन्सिल बेचनी शुरू कर दी।

कई दिन गायब रहने के बाद वह आया। एक खूबसूरत इंक पैन्सिल भेंट लेकर।

जोगेन्दर को जब पता चला वह भड़क गया, 'पहुंच गए फिर वहीं। तुम नाली और पटरे से ऊपर उठना ही नहीं चाहते, है न !'

आतिश बड़े लाड़ से हंसा, 'साला ! तू कौन-सा महलों में बैठा ? हम पटरी पर तो तू पटरे पर। देख, आइन्दा मुझे ये साफ उंगलियां दिखाकर मत धमकाना ! तुम्हें शर्म आती है, तो तुमसे नहीं मिलूंगा, पर करूंगा वह जो मेरा मन होगा। आखिर उन कमबख्तों को कुछ भेजूंगा या सीधे जहर ही ?'

जोगेन्दर पस्त और सुस्त हो गया। आतिश के लिए एक छोटा-सा काम तक न जुटा पाने की निजी निराशा कम नहीं थी।

खाना बनाना उषा को कितना आता था, यह तो पांच दिन बाद ही दोनों को पता चला, जब उषा ने घर में खाना बनाने की कोशिशें शुरू कीं। प्रेम में आकंठ डूबे होने के बावजूद जगत से खाना खाया नहीं गया और उसने हाथ धो लिए। आलू-पनीर में पनीर चमड़े की तरह चमचोड़ था और आलुओं की लुगदी बन गई थी, फिर सब्जी की मात्रा इतनी कम थी कि उसे सिर्फ चटनी की तरह चखा जा सकता था। उषा को खुद खाना बेस्वाद लग रहा था, पर उसने सुबह से बेढब मेहनत के बाद यह पकाया था और अब वह इतनी थक गई थी कि स्वाद के पीछे भूखी नहीं रह सकती थी।

शराब खाने का रोमांस हनीमून के साथ-साथ उतरता

गया। शुरू-शुरू में जो जगन दाल कच्ची रहने पर प्यार और शर्म के साथ रोटी या लेता था, अब खाना देखते ही खीजने लगा। वह एक कौर में सब कुछ नासाम कर देता, बिना यह सोचे कि उषा ने कितनी मेहनत लगाकर अपने हाथों सब तैयार किया है, बावजूद पाप-पुण्य, घड़ी और धीरज गोद में साथ-साथ रख। वह चिढ़ता, फिर मसमोसा करता, फिर चिढ़ता…।

दरअसल खाना बनाना उषा के लिए संस्कृत पढ़ने से मुश्किल काम था। इस कला में न उसकी दिलचस्पी थी दखल। घर पर जब उसकी मां रसोई में काम करती थीं, कभी-कभी उनके अर्दली की तरह उन्हें बर्तन पकड़ा देती थी बाजार से सब्जी ला देती, लेकिन पूरी रसोई संभालने का मौका नहीं पड़ा था। पापा की आवाज कान में पड़ी नहीं कि रसोई से बाहर।

अब उषा को यह अचम्भा हो रहा था कि ये बातें शादी से पहले कैसे सामने नहीं आईं, कैसे नहीं आया। पहले ज्वार के बाद, कुछ अंशों में वह इस आदमी को पहचान नहीं पा रही थी इस आदमी की मांगें बढ़ती जा रही थीं। वह जगह पर चाहता था और खूंटी पर बनियान। अगर जगन को कालिज के लिए देर हो रही होती, तो वह बिना बताए सीढ़ियां उतर जाता और जब उषा पसीने-पसीने हुई परांठे की प्लेट लेकर कमरे में आती, उसका मन होता प्लेट के साथ-साथ वह सिर भी पटक से। ऐसी निःशब्द सजाएं उषा को असह्य थीं।

जगन के चले जाने के बाद उषा के पास मोटे कामों का एक अम्बार पड़ा होता और अकेलापन। मैले कपड़े, खुले फड़फड़ाते अखबार, बर्तनों की भिनभिन में उसे अपनी प्रेम कहानी का अन्तिम वाक्य चेतावनी की तरह नजर आता।

पर ऐसे क्षण अपेक्षाकृत कम थे। रसोई से परे एक मस्ती भरी दुनिया थी, जिसमें समुद्र था, सड़कें थीं और बिस्तर। इन तीनों जगहों का दोनों को चाव था। अगर कभी प्रतियोगिता होती, वे शहर के सबसे सैलानी दम्पति घोषित किए जा सकते थे। गलत-सही सड़कों का, दूर दराज चाय की दुकानों का शिकार करते थे घंटों बिता देते। इसी दौरान उन्होंने तरीका निकाला था कि लोकल रेल की पटरियों के किनारे-किनारे ए

समानान्तर दुनिया है, यहां बेमिसाल बेचारगी और बेहिसाब
दूरखा साथ-साथ चलती हैं। शुरू-शुरू में समुद्र के किनारे और
स्टेशनों के आस-पास घूमना उन्हें पसन्द आया था। दोनों ही
ज्गह उन्हें महानगर का बोध कराती थीं, लेकिन जल्द उन्होंने
या, रात गहराने पर न समुद्र निरापद है, न सड़क।

इस कॉस्मोपोलिटन शहर मे, जिसकी तुलना विदेश के प्रमुख
गरों से की जाती थी अचानक मराठा और मद्रासियों में
रहत्त हो जाती। रातों-रात सिन्धी मकान मालिक कायस्थ
रायेदारों पर मुकदमें ठोक देते। जगन को शहर के स्वभाव
र आश्चर्य था। एक तरफ आदमी आदमी के बीच इतनी
दासीनता, दूसरी तरफ इतनी भकभकाहट।

एक बार वे समुद्र के किनारे निकल गए थे। हवा ढूढते-
ढ़ते वह शिवाजी पार्क तक पैदल चले आए। समुद्र उतरा हुआ
ा। गीली रेत और पत्थरों के बीच उषा ने देखा था, दो आदमी
पड़े से इक कोई चीज ले आगे बढ़ रहे थे। उनके देखते-न-
खते काफी दूरी पर, जहां जल की सतह शुरू होती थी, दोनों
ादमियों ने कपड़ा हटाकर एक शिशु निकाला। बच्चा नव-
ात लगता था, ठीक से धुला भी नहीं था। जगन बोला, 'चलो
ेखें, बच्चा जिंदा है या मरा हुआ।'

'लड़का है या लड़की?' उषा के मन में सवाल उठा। उन्हें
य हुआ, फिर भी वे उस तरफ चल दिए। उन आदमियों से
भी वे दूर ही थे कि उन्होंने बच्चे की वह नवजात, असहाय
लाहट सुनी और पानी की सतह पर उसका खिलौने की तरह
हलना। उषा चीख पड़ी।

वे आदमी मुड़े। जगन ने कहा, 'क्यों वह बच्चा कहां से
ाया? आपको पता है, आपने जानवर से भी बदतर काम
किया है?'

जिस आदमी ने तहमद बांधा हुआ था, दूसरे आदमी से
कहा, 'कइसा मानूस होता है ये लोक। अपने आपसे छोकरे का
बान लेता, हमारे कू कहता।' दूसरे आदमी ने तर्ज पकड़ ली,
गलती करने के पीछे बोलने से क्या? चलो दोनों नाके थाने।'

अब जगन और उषा समझे कि फन्दा उन्हीं के गले में डाला
जा रहा है। बिना और हुज्जत किए वे वहां से मुड़कर भागे, तो

'झूठ, उसने मुझे बताया, वह सिर्फ पांच मिनट लेट थी और उसके यह कहने पर भी कि उसकी तबीयत ठीक नहीं। आपने उसे अन्दर नहीं आने दिया।'

'सर ! तब बहुत देर हो चुकी थी। लेक्चर आधे से ज्यादा हो चुका था।'

'आपको पता है लड़कियों को कई किस्म की तकलीफें हो सकती हैं। आपको लिहाज करना चाहिए था। ऐसे छात्रों को धमकाओगे तो संस्था कैसे चलेगी ?'

'पर सर···!'

'आगे से ऐसा सुनने में न आए, गो।'

इस हिदायत को ध्यान में रखते हुए साहनी अब इसी तर्ज पर क्लास लेने लगा। कोई छात्र देर से आता, वह कुछ न कहता। कोई अनुपस्थित होता, वह वजह नहीं पूछता। छात्राएं तो लगभग समय पर आतीं, लेकिन कई छात्र आदतन देर से आते। वे चहलकदमी करते क्लास में शामिल हो जाते और चहलकदमी करते निकल जाते। साहनी ऐसे समय पहली लाइन में बैठे छात्रों पर नजर गड़ाकर पढ़ाने लगता।

तभी वह दुर्घटना हो गई।

दुर्घटना वाले दिन सुबह-सुबह ही दत्ताराम अपराधी की तलाश में स्टाफ-रूम के चक्कर लगाने शुरू कर देता।

इस बार सामन्त साहब ने उसे बैठाया। उनके सामने बी॰ ए॰ द्वितीय वर्ष का रजिस्टर खुला था।

'हर्षा मोदी और सुकान्त देसाई, दोनों तुम्हारे स्टूडेंट हैं ?'

'जी।'

'वे कितने दिनों से क्लास में नहीं आए ?'

'यह तो मैं रजिस्टर देखकर ही बता सकता हूं।'

सामन्त साहब ने उसके सामने रजिस्टर रख दिया।

सुकान्त देसाई पिछले पांच दिन से गैरहाजिर था। हर्षा मोदी परसों से नहीं आई थी।

उसने कहा रजिस्टर पर हाजिरी स्पष्ट है।

'तुम्हें पता है, ये दोनों भाग गए हैं। हर्षा के मां-बाप को कल बड़ी मुश्किल से इस बात का पता लगा है कि उनकी लड़की सुकान्त नाम के अपने सहपाठी के साथ अहमदाबाद चली गई है,

आ-रहा है। इस बात की पुष्टि करने के लिए वे शिवाजी, तिलक गोखले, महारानी लक्ष्मीबाई आदि के कथन उद्धृत करते रहते।

पर केडिया कालेज का मैनेजर गुजराती था। वह इस घटना से बहुत उद्वेलित था। सामन्त को निकाल फेंकने के लिए वह इस बात को बम की तरह इस्तेमाल करना चाहता था। पर सामन्त इस कालेज में इक्कीस साल से थे। इसके कच्चे-पक्के जानते थे। उसे कई तरह से बचा और दबा चुके थे। उनसे वह जलता भी था और दबता भी।

जोगेन्दर साहनी की समझ नहीं आ रहा था उसे और क्या कहना चाहिए?

सामन्त उसे ऐसा महसूस करा रहे थे जैसे इन दोनों के भाग जाने की जिम्मेदारी उसी पर है।

'आप छात्रों से ज्यादा व्यक्तिगत बातचीत तो नहीं करते?' सामन्त बोले।

'नहीं, सर! उसका प्रसंग ही कैसे उठ सकता है?'

ऐसी बातों से अनुशासन भंग होता है, फिर छात्र गलत बातों में भी अपने अध्यापकों का अनुसरण करते हैं।'

वैसे साहनी ने अपने विवाह का कोई प्रचार नहीं किया था। वरना केडिया कालेज की प्रथा यह थी कि जो प्राध्यापक शादी से लौटता था, प्रिंसिपल सहित सारे स्टाफ को चिवड़ा, चिप्स और चाय की पार्टी देता और बदले में स्टाफ के चालीस प्राध्यापक एक-एक रुपया लिफाफे में डाल इकतालीस रुपये की रकम उपहार-स्वरूप मेजबान को पकड़ा देते। कई बार किसी के पास बंधा रुपया न होता तो रेजगारी ही लिफाफे में डाल दी जाती।

साहनी ने गम्भीर होते हुए कहा, 'सर! मैंने कोई गलत काम नहीं किया। आप ऐसा कैसे सोच सकते हैं?'

'देखो, हमारी संस्था तो एक परम्परावादी संस्था है। यह अन्तर्जातीय विवाह, प्रेम-विवाह वगैरह तो पारसी, ईसाई वगैरह में चलते हैं।'

साहनी को अन्दर-ही-अन्दर तीव्र विरोध महसूस हुआ। उसे नहीं पता था कि इन बातों से कालेज के कामकाज में कैसे फर्क पड़ता है।

जब वह कैबिन से निकला उसका मूड खासी खराब था। घर-गांव से दूर इतनी छोटी-सी नौकरी के लिए इतनी सारी गफलतें, दलीलें और दावे।

एक बीस का पीरियड फर्स्ट ईयर का ट्यूटोरियल था। उसने पन्द्रह छात्रों के मुंह को 'पेट्रियोटिज्म' पर निबन्ध लिखने को दे दिया और कुर्सी पर बैठ गया। बैठे-बैठे वह शायद किसी सोच में पड़ा था। उसका ध्यान तभी टूटा जब दो बजे का बजर हुआ। उसे महसूस हुआ यह क्लास बड़ी जल्दी खत्म हो गई है। उसने छात्रों से ट्यूटोरियल पेपर्स बटोरे और स्टाफरूम में आ गया।

स्टाफरूम में इस वक्त चाय की गहमा-गहमी थी। कैंटीन का छोकरा दनादन चाय-समोसे ला रहा था। साहनी का खाने का डब्बा एक कोने में कई और डब्बों के साथ रखा था। साहनी डब्बे की ओर सरका। यह उतावली खाने को लेकर नहीं थी, वरन उस स्लिप को लेकर थी, जो कभी-कभी रोटियों के ऊपर रखी मिलती थी। ये उनके स्थानीय प्रेम-पत्र थे। इनमें कभी लिखा होता, 'मैं पांच बजे आ रही हूं' कभी, 'बरसात हो रही है, दिन बड़ा लम्बा है', कभी, 'तुम छुट्टी ले कर आ जाओ न।'

खाना आज भी वैसा ही था। आलू टमाटर में इतनी मिर्चें थीं कि उसे किसी तरह भी खाया नहीं जा सकता था। एक डब्बे में थोड़ी-सी लहसुन चटनी और लोणचा था, जो वे लोग परसों बेडेकर के यहां से लाए थे। रोटियां ठीक थीं, नन्हीं-नन्हीं और पतली। पर उन्हें खाने की नहीं देखने या दिखाने की इच्छा होती थी।

साहनी को याद आया, उसकी मां ऐसी रोटियां पकाती थी कि दो ही में पेट भर जाए। उसे मां के हाथ का सौंधा-सौंधा सरसों का साग, मक्की की रोटी और लस्सी का ध्यान याद आया। उस खाने की महक से ही तृप्ति हो जाती थी।

साहनी ने थोड़ा-बहुत खाया, फिर छोकरे को चाय लाने के लिए कह दिया। तभी उसकी नजर अपने विभागाध्यक्ष पर [illegible] के० सी० शाह उर्फ करमचन्द शाह उसी की तरफ रहा था। उसने अभिवादन किया और पास पड़ी कुर्सी पर

ला गया।

करमचन्द शाह ने आज राउण्ड पर देखा था। साहनी कुर्सी पर चुपचाप बैठा था, छात्र आराम से खुसुर-फुसुर करते हुए, लिखत काम कर रहे थे। शाह एक घिसा हुआ आदमी था। उसे लगा कि कन्फर्म होते ही लोग पंख की खाने लगते हैं। उसने सोच लिया आज वह साहनी को दबाएगा। साहनी से वह वैसे भी रुष्ट रहता था। साहनी उसे हमेशा इस बात का एहसास दिलाता था कि वह शाह से यौवन और अध्ययन में पन्द्रह वर्ष आगे है। ऐसे अहसास शाह को पसन्द नहीं थे। खासतौर पर तब जब उसने पिछले ही साल दूसरा विवाह किया था। वह समय पर कोर्स और इंटरकोर्स खत्म करने का कायल था। दस साल पहले नियुक्ति के प्रथम वर्ष में उसने जो नोट्स बनाए थे। उन्हीं को वह हर साल छात्रों को लिखवा देता। उसे लांगफेलो और किपलिंग की कुछ कविताएं जबानी याद थीं, जिन्हें वह हर क्लास में उद्धृत करता। खाली समय में वह अमीर बाप की बेटियों की ट्यूशनें करता और अपनी ताजा, वर्तमान पत्नी के नाज नखरे उठाता।

'आप आज फर्स्ट इयर के ट्यूटोरियल में क्या करा रहे थे?'

'निबन्ध लिखवाया था, पेट्रियॉटिज्म।'

'पर ऐसे निबन्ध लिखवाने का फायदा? आपकी क्लास बात कर रही थी। आपकी कोई दिलचस्पी नहीं थी। मैंने अक्सर देखा है, ट्यूटोरियल क्लास में आप आराम फरमाते हैं। आपके काम में कोई मोटिवेशन नहीं है। जब आप प्रोबेशन पर थे, तब तो ऐसा नहीं था।'

साहनी एकाएक [illegible] हो गया 'ये सब आरोप बेबुनियाद हैं। आप ऐसा कैसे कह सकते हैं? जब छात्र लिख रहे हों, उस समय मैं कैसे बोल सकता हूं। सभी इस तरह ट्यूटोरियल लेते हैं।'

'आप बोल नहीं सकते, पर क्लास में चहलकदमी तो कर सकते हैं। आप में प्रॉपर मोटिवेशन नहीं। तभी तो आप वक्त पर कोर्स खत्म नहीं करते, एक्स्ट्रा क्लास लेते हैं। अभी पिछले हफ्ते आपकी एक छात्रा शिकायत कर रही थी कि उसे 'ड्रीम चिल्ड्रेन' बिलकुल समझ नहीं आया। वह कहती है, क्लास में

किसी की समझ में नहीं आया।'

'यह झूठ है। अगर ऐसा होता, तो क्लास क्या मुझे नहीं बताती ? क्या मैं फिर से समझाने से इनकार कर देता ?'

"आप मुझे झूठा ठहरा रहे हैं। आपका मतलब क्या है।'

बहस का मलीदा बन चुका था। साहनी एक और झगड़ा मोल नहीं लेना चाहता था।

मैं आपको कुछ नहीं कह रहा हूं। आप व्यर्थ उत्तेजित न हों। ड्रीम चिल्ड्रेन दरअसल एक मुश्किल गद्यांश है। चाहे वह ऊपर से सरल दिखता हो।'

'पर मिसेज रमैया ने भी तो वही फर्स्टयर 'ए' में पढ़ाया है। उनकी क्लास को कैसे समझ आ गया।

साहनी बोला, 'उन्हें भाषा का फायदा है। वे सारी चीजें गुजराती में समझा देती हैं।

"आप झूठा आरोप लगा रहे हैं। आपके पास कोई सबूत है ?'

यह एक सर्वविदित बात थी पर इसका कोई लिखित सबूत साहनी के पास नहीं था। उसके भक्त छात्रों ने उसे बताया था कि मिसेज रमैया सारे समय क्लास में गुजराती ही बोलती हैं। वैसे जब वे अंग्रेजी बोलती थीं, तब भी कभी यह नहीं लगता था कि वे अंग्रेजी बोल रही हैं। वे कोलरिज को कोलरीज और शेक्सपियर को शेक्सपीयर कहती थीं। वे बहुधा स्टाफ रूम में पाठ्यपुस्तक पर डिक्शनरी में से मायने उतारती देखी जा सकती थीं। पर वे सीनियर थीं, सजातीय थीं और स्त्री।

मिस्टर साहनी ! आपने मुझे झूठा ठहराया और मिसेज रमैया पर गलत आरोप किया है। मैं आपके खिलाफ ऐक्शन लूंगा।

साहनी का मन हुआ कहे, 'जो तुम्हारी मर्जी आए करो, रंगीन बुड्ढे !"

पर वह कुछ नहीं कह पाया। वह झूठमूठ सॉरी भी नहीं कह पाया। वह सिर्फ उसकी ओर देखता रहा। उसकी आंखों में अवश्य ही डर या अफसोस जैसे कोई भाव नहीं रहे होंगे, इसी-लिए शाह और चिढ़ गया और वहां से उठकर बड़ी मेज के पास [illegible] गया।

साहनी को पता था वह अखबार में क्या पढ़ता था। वह

ाबार सिर्फ शेयर का बाजार-भाव जानने के लिए खोलता ।'

'साहनी ने मस्टर में दस्तखत किए और घर चल दिया। तो उसका हो रहा था वह डायरी में से पन्ना फाड़कर तीफा लिखे और जूते की नोक पर टिका कर सामंत और ह के मुंह पर फेंक दे. पर इतनी उत्तेजना में वह सबसे पहले ा के पास होना चाहता था।

उषा उस समय सोई थी। जब साहनी ने दरवाजा खट-टाया, तभी उसकी आंख खुली। उसने दरवाजा खोला, तो हनी को एक बार फिर छह महीने पहले का वह क्षण याद आ या, जब वह रात को रोलकॉल लेकर खड़ा था और उषा चानक नींद में नहाई उसके सामने आ खड़ी हुई थी। उसका न हुआ वह उसकी आंखों को फिर से चूम ले, पर उषा तबतक ुंह धो आई थी और बड़े रूठे अन्दाज में कह रही थी, 'इतनी र के लिए अकेला छोड़ जाते हो। हमें भी अपने साथ नौकरी देना दो न !

साहनी ने उसे अपने पास खींचते हुए पूछा, ''क्यों नौकरी बहुत अच्छी चीज होती है ?'

'ठहरो, तुम्हारे लिए चाय तो चढा दूं।' उषा उसकी बाहों से अलग हो उठने लगी।

'अगर मैं छोड़ बैठूं तो तुम्हें कुछ करना ही होगा।'

तब उषा को उसकी आवाज में परेशानी का आभास मिला था।

सारी बात पता चलने पर उसे तैश आया, छोड़ दो, क्या समझते हैं ये लोग ? तुम्हें दूसरी नौकरी नहीं मिल सकती ?'

'मैट्रिक पास लड़कियों की तरह मत सोचो उषा ! क्या तुम्हें कोई अहसास नहीं है ? हमारे यहां शिक्षित बेरोजगारों की संख्या क्या है ?'

'नहीं करेंगे नौकरी। कुछ और कर लेंगे। आबिद की तरह फ्लोरा फाउंटेन पर पेन बेच लेंगे। चाय की दुकान खोल लेंगे।'

'मुसीबतों को लेकर रोमांटिक होना तुम्हें फिल्मों ने सिखाया है। आंखें खोलकर सोचो, कहां रहेंगे ? क्या शहर और सपना

के नाटक नायिका की तरह पटर दाहर है।

मुझे दिल्ली में फौरन नौकरी मिल सकती है।'

'पर मैं तो दिल्ली नहीं जाना चाहता।'

'तुम्हें दिल्ली से इतनी अरुचि क्यों है?'

'यह एक डेड सेन्ट सिटी है। साथ उसके विराम की योजनाएं बनती रहें, वहां बरसों से उतनी ही भीड़ रहेगी और कनॉट प्लेस में उतने ही बेवकूफ।"

यह सब तो यहां भी है, फिर बम्बई तुम्हें इतनी पसन्द क्यों है?'

बम्बई मुझे पसन्द है, तुम मुझे पसन्द हो, इन बातों का मेरे पास कोई तर्क नहीं है।'

फिर वे दोनों ये सारी परेशानियां भूलकर लेट गए वे साथ-साथ, चुपचाप, एक दूसरे की सांस महसूस करते।

उषा ने जल्द ही थककर आंख बंद कर ली; लेकिन शाहनी फिर उसी सोच में पड़ गए।

हमेशा कुछ लोग ऐसे होते हैं जो आपको चैन से जीने नहीं देते, उसे लगा। शाह उससे क्यों चिढ़ता है? उसने तो कभी उससे एक्जामिनरशिप भी नहीं मांगी। कभी दो पीरियड के लिए भी नहीं झगड़ा। वह अठारह की जगह इक्कीस पीरियड कर रहा है। विभाग के किसी आदमी से उसने शाह की कभी बुराई नहीं की। इसकी सिर्फ एक वजह हो सकती थी कि वह छात्रों में लोकप्रिय था। क्लास में छात्र उसके साथ अद्भुत तादात्म्य स्थापित कर लेते। वह पढ़ाता भी था, समझाता भी, हंसाता भी था, धमकाता भी। उसकी यह गर्मजोशी, यह जिन्दादिली विभाग में चर्चा का विषय थी। बहुधा ऐसी स्मार्टनेस किसी भी विभाग की सुस्ती के लिए एक चुनौती बन जाती थी।

उषा की समूची देह पर हाथ फेरते हुए साहनी को लगा, वहां हड्डियों के सिवाय कोई आभूषण नहीं है। इस मनःस्थिति में यह बात उसे सुस्त कर गई, हालांकि कुछ महीने पहले यही हड्डियों का नुकीलापन उसे प्रिय लगा था। उसे लगा, वह उसके लिए सोने की जंजीर न सही, टॉनिक तो खरीद ही सकता है।

उसे याद आया उन लोगों के पास इस समय सिर्फ

चौबीस रुपये बचे हैं जबकि पहली तारीख आने में अभी ग्यारह दिन बाकी हैं वे जिस ढंग से रह रहे थे, वह मामूली से भी निचले दर्जे का था। मकान मालिक को सौ रुपये का एक नोट थमा देने के बाद उसके पास सिर्फ दो सौ अठारह रुपये बचते थे। उन्होंने कोई महंगा शौक नहीं पाल रखा था; पर वे इतना जरूर चाहते थे कि शाम को जब वे पैदल सैर पर निकलें तो एक पान या तबीयत हो तो चाय आसानी से पी सकें। कभी-कभी यह भी नहीं हो पाता।

उसे उषा पर इकट्ठा बहुत-सा लाड़ आया। दुबली-सी यह लड़की, कैसे इतना कोरा विश्वास लिए उसके साथ चल पड़ी थी, उसकी लड़ाइयों में हिस्सा बंटाने! वह उसे कुछ भी तो *नहीं दे पाया। बाटा की एक जोड़ी चप्पल तक नहीं।*

उषा ने आंखें खोलीं।

जगन की मुद्रा देख उसका मुंह अपनी तरफ घुमाकर बोली, 'क्या सोच रहे हो, बही।'

'नहीं, यह कि हम दोनों के बीच कुछ भी नहीं है, प्यार के सिवाय।'

'और क्या होना चाहिए?'

'एक पुख्ता नौकरी, एक मोटी तनखाह, एक आरामदेह मकान...।'

'और एक ठस्स और ठोस पति।' उषा ने वाक्य पूरा किया *और वे खिलखिलाकर हंस पड़े।*

'साले शाह की ऐसी की तैसी। आज हम बैदा-पाव खाएंगे, फिर सीटीलाइट में फिल्म देखेंगे, फिर नीलम में डिनर खाएंगे।

'यह सब तो हम आज करेंगे, फिर कल क्या करेंगे?'

देखो जब मैं उड़ान पर हूं तुम खतरे का सिग्नल न दिया करो, *समझीं। उठो, तैयार हो, फिर कहोगी हाय एक गाना* निकल गया, दो आंसू निकल गए।'

एक दिन उषा से मद्रासिन ने बातचीत करने की कोशिश की थी, बाहरी गैलरी से।

'तुम क्या करता सारा दिन? सोता?'

सेडाइज्ड रेट पर एक रुपए में लंच दिया जाता था, जो
लोकप्रिय था, फिर वहाँ की दही मिसल, कॅंपिपू, ढोकला
बात थीं। वह हर समय ठसाठस भरा रहता।

पिछले कई महीनों से कैन्टीन का ठेकेदार गुलाबसिंह
ला रहा था कि चम्मचों का हिसाब ठीक-ठीक नहीं मिलता
रोज दर्जनों में चम्मच खो रहे थे। उसे लगा, कैन्टीन में
म करनेवाले छोकरे तो यह काम कर नहीं सकते। आखिर
लंच की वह शाम पांच बजे छुट्टी से पहले तलाशी लेता है।
न-ह यह काम स्टूडेन्टों का ही है। तंग आकर वह प्लास्टिक
हाके, सस्ते चम्मच खरीद लाया, पर जिस दिन प्लास्टिक
चम्मच कैन्टीन में चालू किए गए, उस दिन हंगामा खड़ा हो
था।

संयोग से उस वक्त जोगेन्दर साहनी भी लक्ष्मण देशमुख के
ाथ बैठा वहाँ चाय पी रहा था। वे दोनों साथ कैन्टीन नहीं
ाए थे। जोगेन्दर जब वहाँ आया, उसने देखा, लक्ष्मण देशमुख
हाँ बैठा हुआ है। वह भी उसकी टेबिल पर आ गया।

लड़के-लड़कियों ने पहले शोर मचाया, 'दूसरे चम्मच
ाओ। स्टील वाले लाओ।'

जब कोई सुनवाई नहीं हुई तो उन्होंने मेजों पर से चम्मच
फेंकने शुरू कर दिए। कुछ छात्रों ने चम्मच चटाचट टुकड़े कर
हवा में उछाल दिए। गुलाबसिंह अन्दर से निकलकर आया।
और चिल्लाने लगा, 'यही चम्मच मिलेंगे अब से। लेना है, तो
लो नहीं तो हाथ से खाओ। चोर कहीं के। चम्मच जेब में डाल-
कर चलते बनते हैं। मैं कैन्टीन में ताला लगवा दूंगा, अगर यहाँ
गुण्डागर्दी की!'

इस बकझक से लड़के-लड़कियां और भी उग्र हो गए।
उन्होंने क्रॉकरी तोड़नी शुरू कर दी।

दरअसल ये चम्मच थे भी बड़े बदसूरत और बेकार। उनसे
दही बड़ा काटना भी मुश्किल था, दोसे की कौन कहे?'

साहनी को छात्रों की यह उग्रता, यह ताकत, अच्छी लगी
थी। ऐसा उसकी मुद्रा से लगा होगा।

लक्ष्मण देशमुख ने कहा, 'चलो, यहाँ राउडिज्म हो रहा है।
स्टाफरूम में चलें।'

साहनी बोला, 'देखो, स्टूडेन्ट्स कितनी मासूम चीज होते हैं। मगर ईवनिंग में ये कभी भी फट सकते हैं। सारे दंगों की शुरुआत अक्सर ईवनिंग में होती है।'

सहसा देशमुख ने अपने आस-पास खड़े छात्रों में से एक-दो को समझाया। कोई असर नहीं हुआ, बल्कि उन्होंने देशमुख का प्याला भी कुहनी मार से ज़मीन पर फेंक दिया।

देशमुख ने जो हाथ सामने रखा, उसी को डांटना शुरू कर दिया, 'तुम्हारा आइडेन्टिटी कार्ड कहाँ है, प्लीज़ शो योर आइडेन्टिटी कार्ड।'

लड़का ठिठक के हँस दिया, 'आई डिडन्ट डू इट सर!' साहनी और देशमुख वहाँ से चल दिए। साहनी ने देशमुख सलाह दी, 'इस समय ये भावुक बाहर हो रहे हैं। इन्हें न छेड़ो ही अच्छा।'

यह बात इन्होंने स्टाफ-रूम में भी सुनाई।

ढाई बजे जब साहनी बी०ए० ऑनर्स को फ़ॉस्टर पर लेक्चर दे रहा था, उसे क्लास में प्रिंसिपल साहब की चिट मिल 'फ़ौरन मिलो।'

साहनी ने क्लास डिसमिस की और केबिन में चला गया। साहब वहाँ अकेले नहीं थे।

एक कुर्सी पर डीन ऑफ़ स्टूडेन्ट्स डॉ० वत्सराज बैठे थे एक पर गुलाबसिंह, कोने की कुर्सी पर लक्ष्मण देशमुख था।

साहनी प्रसंग समझ गया। चपरासियों ने केबिन के द्वा पर्दे खींच दिए।

'आज जब कैन्टीन में दंगा शुरू हुआ, आप वहाँ मौ थे।'

'जी लक्ष्मण देशमुख भी मेरे साथ थे।'

'झगड़ा कैसे शुरू हुआ?'

'स्टूडेन्ट्स स्टील के चम्मच मांग रहे थे। कैन्टीन के मैनेज के मना करने पर वे भड़क गए।'

डॉ वत्सराज बोले, 'क्या आपको याद है, सिर्फ़ दो-चार ही भड़के थे या सभी एक साथ।'

'बात शुरू में आपस में ही हुई थी। वह तो जैसा कि ...र के बोलने पर...'

ाबसिंह बीच में बोला, "लीजिए मेरा नुकसान हो और
ी में ! स्टील के चम्मच मैं कैसे दे देता…?

ामन्त उसकी बात काटकर बोले, 'आपने उस समय क्या
?'

जी हम तत्काल क्या कर सकते थे ? मामला अचानक उप
ा।'

लेकिन एक जिम्मेदार प्राध्यापक के रूप में आपने समझाने-
ी की कोई कोशिश तो की होगी ?'

गुलाबसिंह बीच में बोला, नहीं साहब ! ये लोग कुछ नहीं
। मेरा तीन सौ रुपया का क्रॉकरी टूट गया। बताइए मैं
जाऊंगा ?"

प्रिंसपल सामन्त बोले, 'गुलाबसिंह ! तुम्हारे नुकसान के
में हम सोमवार को जवाब देंगे, तुम जाओ।'

फिर वे साहनी की ओर मुड़े, 'मिस्टर देशमुख कह रहे हैं,
चुपचाप सब कुछ देखते रहे। उसने आपसे उठने को कहा,
पने कोई जल्दी नहीं दिखाई।'

'मैं उस वक्त चाय पी रहा था, देशमुख भी।'

साहनी ने देशमुख की ओर आश्वासन के लिए देखा। वहां
नी और भय के अलावा कुछ नहीं था।

"पर आप सोच सकते हैं, आपके वहां बैठे रह जाने से इस
ने में छात्रों को कितनी शह मिली। उन्होंने सोचा होगा, इसमें
ापकी सहमति है।' डॉ० वत्सराज बोले, 'वे दो वर्ष स्टूडेन्ट
ाइन्ड पर रिसर्च करने मे अमरीकी भाड़ झोंक आए थे।
हां से डॉक्टरेट हासिल न होने पर यहां की एक पिछड़ी
ुनिवर्सिटी में पढ़े दो साल सुस्ताते रहे और अचानक एक दिन
डॉक्टरेट ले यहां स्टूडेन्ट्स डीन नियुक्त हो गए। साहनी बोला,
'मैं ऐसा नहीं समझता। वैसे जो कुछ हुआ वह दुर्भाग्यपूर्ण
था।'

सामन्त ज्यादा उत्तेजित थे, 'इस तरह तो छात्र आए दिन दंगे शुरू कर देंगे। आपको अन्दाजा नहीं, यह शुरुआत कितनी खतरनाक होती है। हमारी संस्था में आज तक छात्र-आन्दोलन नहीं हुए। संस्था की कितनी बदनामी होगी!'

डॉ० वत्सराज बोले, 'मिस्टर साहनी! देशमुख तो कई नेचरशाइ हैं, पर आप तो छात्रों में खासे पापुलर हैं। छात्र अक्सर कॉरीडोर में, लायब्रेरी में आपको घेरकर खड़े रहते हैं। मैं समझता हूं अगर आज आप थोड़ी जिम्मेदारी से काम लेते, तो यह दंगा टल सकता था। आपको पता है, सही नेतृत्व कितना बड़ा और महत्त्वपूर्ण होता है!'

देशमुख बोला, 'मैंने तो उन्हें डांटने की कोशिश भी की'

सामन्त ने उसकी ओर सिर हिलाया।

साहनी बोला, 'सच यह है कि गुलाबसिंह छात्रों के स बड़ी बदतमीजी से पेश आया। उसने उन्हें 'चोर कहीं के' कहा।'

डॉ० वत्सराज बोले, 'गुलाबसिंह अनपढ़ हैं; पर आप पढ़े-लिखे समझदार नौजवान हैं। जब आप इस कालेज एम्प्लाई हैं, तो यह आप नहीं कह सकते कि आपकी जिम्मेदारी सिर्फ क्लासरूम के अन्दर है, बाहर नहीं, आपको एक टीचर अपने रोल के बारे में अधिक सीरियस और संस्था के अधिक सिन्सियर होने की कोशिश करनी चाहिए।'

'मैं नहीं समझता, मेरे न बोलने का मतलब यह था कि सिन्सियर और सीरियस नहीं हूं।'

'तुम्हें अपने सुपीरियर्ज के साथ बहस में पड़ना शोभा नहीं देता। तुम्हें डॉ० वत्सराज से क्षमा मांगनी होगी।'

'मैं बहस नहीं कर रहा हूं, अपनी बात समझा रहा हूं। आप लोग मुझे मिसअण्डरस्टैंड कर रहे हैं।'

'मैं और कुछ नहीं सुनना चाहता। माफी मांगो औ

ाओ।'

आक्रोश में साहनी का बदन कांपने लगा। बड़ी कठिनाई से सने डॉ॰ वत्सराज की तरफ मुड़कर उनकी ओर न देखते हुए हा, 'मुझे अफसोस है।' और बाहर निकल आया।

अन्दर अभी डॉक्टर वत्सराज और देशमुख सामंत के पास ।

डॉक्टर वत्सराज ने कहा, "इस दुर्घटना से मेरी जिम्मे-ारियाँ बहुत बढ़ जाएंगी। आप मिस्टर साहनी पर कड़ी नजर खें। मेरा खयाल है, ये खुद बड़े उग्र किस्म के स्टूडेन्ट रहे ोंगे। अन्त तक उनकी हमदर्दी उन दंगाइयों के साथ थी।'

प्रिंसिपल सामन्त के माथे पर बल पड़े हुए थे। इतना एरा-ान्ट मातहत उन्हें कभी नहीं मिला था। उनके स्टाफ के लोग ब उनसे मिलने आते, तो कुछ-न-कुछ मांगने और कृतज्ञता से द्गद् वापिस जाते। वह अपने स्टाफ में एक उदार मासिक मझ जाते थे। साहनी आज तक कोई फरमाइश उन तक लेकर हीं आया था। यह बात उन्हें पसन्द नहीं थी।

उन्होंने देशमुख से कहा, "जरा पता लगाते रहना। साहनी किसी राजनीतिक दल का सदस्य तो नहीं। मैं अपने कॉलिज में कोई राजनीतिक प्रपंच नहीं चाहता।'

डॉक्टर वत्सराज गम्भीर हो गए, "इस ओर भी सोचना जरूरी है। यस, दिस इज पॉसिबिल। हमें यह बात गवर्निंग बॉडी के सामने रखनी होगी।'

"सिर्फ शक की स्टेज पर तो कुछ किया नहीं जा सकता। पहले सबूत इकट्ठा होने दीजिए। देशमुख ! देखो, होशियारी से पता लगाने की कोशिश करो। तू डर मत। मैं तुम्हें प्रोटेक्ट करूंगा।'

देशमुख 'ब्राह्म', कृतज्ञता, और सुरक्षा से सदा केबिन से बाहर निकला। कई .हीनों से वह प्रिंसिपल से सीनियर स्केल

ाती महक इतनी तीखी होती कि उनके उतर जाने के बावजूद र तक डब्बे में वह गन्ध भरी रहती। सामने वाली सीट पर गेई गीली बरसाती पहने-पहने ही बैठ गया था। उसकी बर-ाती के दो सिरों से रह-रहकर पानी ऐसे चू रहा था, जैसे तेलती से गिरती धार। शायद उसे पास के स्टेशन तक जाना ा।

माहिम स्टेशन से घर तक पैदल चलने में उसकी पैन्ट चीचड़ के छींटों से खराब हो गई। उसे लगा इस समय घर जाकर सूखे कपड़ों में गर्म चाय पीना कितनी बड़ी नियामत होगी।

घर पर उषा जमीन पर चादर बिछाए कपड़ों पर स्त्री कर रही थी।

साहनी ने ढेर में से अपना पाजामा निकाला। नेफा अभी कुछ गीला था।

'अभी घंटा भर लगाकर सुखाया है। कल के धुले कपड़े हैं, सूखते ही नहीं।' उषा बोली।

घर में हवा आने का कोई रास्ता नहीं था। सीलन अन्दर तक बसी थी। कमरे में जगह-जगह उषा ने हैंगरों पर गीले कपड़े लटकाए हुए थे। पार्टिशन की आधी दीवार पर भी कपड़ों की एक बेतरतीब कतार थी।

साहनी चुपचाप पलंग पर लेट गया।

उषा ने कपड़े, चादर, इस्त्री, सब समेट दी।

चाय बनाकर जब वह लाई, साहनी सो चुका था। उषा को बड़ी खीझ आई। अब यह चाय और चाय में डली यह दुर्लभ चीनी खराब जाएगी, फिर दूसरी बार स्टोव जलाओ, चाय बनाओ।

के लिए बात करना चाहता था। अलबत्ता बैरा या दास हु-
हुआ अगर उसके हाथ आ जाता, उसे छोड़ता नहीं था। वह
महत्त्व से रहित स्टाफ-रूम में अखबार पढ़ने लगा।

सादनी जब बाहर निकला, शाम का धोखा बना हुआ था।
एक बार तो उसका मन हुआ, वह पलट जाए, वहीं खड़ा रहे
देर तक, जब प्रोफेसर सपरिवार निकलें, तो उनके सामने पर और
का जूता मार दे। वे तीन डीन स्टुडेन्ट्स। स्टुडेन्ट्स वेलफेयर
के नाम पर बैठने वाला ठिगना-सा आदमी, जो हर रोज
छात्रों बारिश में बचाने के लिए पत्रिकाएं पाता रहा है।
काम के नाम पर सिर्फ हुक्मासर करता आता है। कभी-कभी
समाचार के 'स्टेट्स' कॉलम की कतरनें नोटिस बोर्ड पर चिपका
देता है। कालेज हॉल में महीने में एक फिल्म-शो करवा देता
है और बुरी यह कि छात्रों का ख्याल रखता है, उनकी जरूरतें
समझता है। सादनी कहता है, इसमें मेरा हाथ था। उसे लगा
वह अभी उन सारे दंगा करने वाले छात्रों को बुला लाए और
कहे, 'जला डालो इस इमारत को! पीट डालो इन ठस्स दिमाग
अधिकारियों को!' उसकी इच्छा हुई वह जोर-जोर से चिल्लाए,
'यह कालेज नहीं है, यह हाउन्डहाउस है—यह हाउन्डहाउस
है!' वह जानबूझकर स्टाफ-रूम में नहीं गया।

वह इस समय किसी को भी फेस नहीं करना चाहता था।

उसने दांत पीसे और एक कटखनी मुद्रा में बसस्टैंड की
तरफ बढ़ गया।

मौसम बेहद गीला था। बारिश रुक गई थी पर सड़कों,
छातों और पैंट के पायचों को गीला छोड़ गई थी। सादनी को
अपने आस-पास लगातार असुविधा हो रही थी।

गाड़ी के अन्दर बारिश की नमी और मछली की बू थी।
कभी-कभी मछली वालियां लगेज डब्बे में जगह न मिलने के
कारण सवारी डब्बों में बैठ जातीं। उनके टोकरों और बदन से

ती महक इतनी तीखी होती कि उनके उतर जाने के बावजूद… र तक डब्बे में वह गन्ध भरी रहती। सामने वाली सीट पर ोई गीली बरसाती पहने-पहने ही बैठ गया था। उसकी बर-ाती के दो सिरों से रह-रहकर पानी ऐसे चू रहा था, जैसे ोंतली से गिरती धार। शायद उसे पास के स्टेशन तक जाना ा।

माहिम स्टेशन से घर तक पैदल चलने में उसकी पैन्ट कीचड़ के छींटों से खराब हो गई। उसे लगा इस समय घर जाकर सूखे कपड़ों में गर्म चाय पीना कितनी बड़ी नियामत होगी।

घर पर उषा जमीन पर चादर बिछाए कपड़ों पर स्त्री कर रही थी।

साहनी ने ढेर में से अपना पाजामा निकाला। नेफा अभी कुछ गीला था।

'अभी घंटा भर लगाकर सुखाया है। कल के धुले कपड़े हैं, सूखते ही नहीं।' उषा बोली।

घर में हवा आने का कोई रास्ता नहीं था। सीलन अन्दर तक बसी थी। कमरे में जगह-जगह उषा ने हैंगरों पर गीले कपड़े लटकाए हुए थे। पार्टिशन की आधी दीवार पर भी कपड़ों की एक बेतरतीब कतार थी।

साहनी चुपचाप पलंग पर लेट गया।

उषा ने कपड़े, चादर, इस्त्री, सब समेट दी।

चाय बनाकर जब वह लाई, साहनी सो चुका था। उषा को बड़ी खीझ आई। अब वह चाय और चाय में डली यह दुर्लभ चीनी खराब जाएगी, फिर दूसरी बार स्टोव जलाओ, चाय बनाओ।

ती, पर अचानक सारी तरफ चहल-पहल मच गई थी। स्त, कलफ लगी वर्दी में पुलिस के सिपाही जमशेदजी टाटा ड के दोनों ओर मोटे रस्सों की बाड़ लगाए जनता को अनुशासित करने लगे थे। तब उषा को याद आया, उसने आज वेरे अखबार में पढ़ा था, प्रधानमन्त्री बम्बई आ रही हैं।

इस वक्त वे शान्ताक्रुज हवाई अड्डे से उतरकर राजभवन के लिए रवाना हो रही थीं।

शीतला देवी मन्दिर रोड से, जहां उषा कतार में खड़ी थी जमशेदजी टाटा रोड का चौराहा बखूबी नजर आ रहा था। सड़क के दोनों ओर धीरे-धीरे भीड़ जमा होती जा रही थी, स्त्रियों, बच्चों और मर्दों की। उषा ने दिल्ली में भी बिलकुल ऐसी भीड़ नेताओं के दर्शनार्थ कई बार खड़ी देखी थी। उसे तब भी और अब भी यही ताज्जुब हुआ कि यह ठलुआ वर्ग ही क्यों लीडरों के दर्शन का अभिलाषी होता है? क्यों नहीं कतारों में सूटेड बूटेड लोग, दफ्तर जाने वाली महिलाएं, टाई छाप बच्चे, स्काई स्क्रेपर्स में रहने वाली सेठानियां नजर आतीं? क्या उनकी अपने लीडरों में कोई दिलचस्पी नहीं?

उषा का मन हुआ वह भी किरासन की कतार छोड़कर मुख्य सड़क पर खड़ी हो जाए। उसकी इस एकरस दिनचर्या में यह एक सनसनी थी।

पर घरेलू विवेक अधिक प्रबल निकला, जिसने उसे समझाया प्रधानमन्त्री तो मुसकराती हुई फुर्र से गुजर जाएंगी। किरासन का दुकानदार 'आज का स्टाक खत्म' की तख्ती बाहर लटका कर, दुकान बन्द कर, चला जाएगा।

तभी मोटर साइकलें गुजरनी शुरू हुईं, फिर पुलिस जीप, फिर स्थानीय मंत्रियों की कारें, अन्त में आई वह खुली कार, जिसमें प्रधानमन्त्री ताजे गुलाब-सी सुन्दर, स्वस्थ और संयत पीछे की सीट में बैठी मुसकरा रही थीं। हमेशा की तरह आज

भी उनके शरीर पर खादी पर खूबसूरत खादी रेशम की स
थी। कहीं कुछ कृत्रिम, दिखाऊ नहीं था। उनका व्यक्तित्व
को हमेशा आन्दोलित कर जाता था। जॉन केनेडी के बा
विश्व की सबसे खूबसूरत नेता मानी जा सकती थीं। उ
उत्साह में वहीं खड़ी-खड़ी हाथ हिलाने लगी। गाड़ी गुजर
और उषा को एक अजब जोश में कांपता खड़ा छोड़ गई
प्रधानमन्त्री के वहां से गुजरने के साथ ही वहां की भीड़ तित
बितर होने लगी। जो लोग शीतला देवी रोड पर निकल आ
उषा ने देखा उनके चेहरों पर वही जोश और रौनक थी, जो
उषा ने अभी-अभी अपने अन्दर महसूस की थी। उषा दुगनी
ताकत से अपने थके पांव स्थिर कर कतार में अपनी बारी का
इन्तजार करने लगी। कुछ देर पहले का उसका घरेलू गुस्सा
और खीझ एकदम गायब हो गई। उसका मन हुआ आज शाम
कॉंग मैदान में वह आम सभा अटेन्ड करे, जहां प्रधानमन्त्री
भाषण देने वाली थीं। इसलिए नहीं कि वह प्रधानमन्त्री की
भक्त थी, बल्कि इसलिए कि उषा उसे एक बहादुर महिला
मानती थी। जिस टारज़न-अन्दाज में प्रधानमन्त्री ने एक-एक
कर अपने प्रतिद्वन्द्वियों को पछाड़ा था, कांग्रेस दल की निराई-
गुड़ाई और छंटाई की थी, उसमें राजनीति में आजकल फुटबाल
मैच का मजा आ रहा था। देखना यह था कि प्रधानमन्त्री कब
तक गोल बनाए जाती हैं।

लेकिन उषा को पता था, जोगेन्दर शाम की इस कवायद के
लिए कभी राजी नहीं होगा। उसे लीडर और भाषण दोनों से
चिढ़ थी, फिर शाम के जिस बिन्दु पर उषा को अपना दिन शुरू
हुआ महसूस होता, जगन को खत्म हुआ।

तेल नाने के एकदम बाद उसे ध्यान आया, कपड़े तो सूखे
ही नहीं हैं। वह इस्त्री करने बैठ गई। इस्त्री करना, वह भी
सीले, बरसाती बू मारते कपड़ों पर, एक अप्रिय काम था। उषा

को याद आया, वह अपनी माँ से कहा करती थी, 'मम्मी ! अ
मेरा आदमी मुझसे कपड़े धुलवाएगा, तो मैं घर छोड़कर भ
जाऊंगी। तुम्हीं हो जो सारा दिन पापा की गुलामी कर
हो।'

मां बड़े शान्त-भाव से हंस देती थीं।

मन-ही-मन कच्ची रुलाई के क्षणिक आवेग को रोककर
जगन के बारे में सोचने लगी। उसने सोचा आज वह जगन
बताएगी, उसने क्या देखा। जबसे शादी हुई थी, घटनाएं, ब
तजुर्बे सब जगन के साथ ही होते थे, वह सिर्फ श्रोता थ
ज्यादा-से-ज्यादा वह उसे यह बता सकती थी कि आज हि
एम्पान वेकेंट में जो इश्तहार निकला है, उसके लिए वह एक
उपयुक्त है। वह जरूर एप्लाइ करेगी वगैरह-वगैरह।

पर जैसा मूड जगन का इस वक्त हो रहा था, इसमें ऐ
बातचीत के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी। गुंजाइश उसमें
प्याली चाय की भी नहीं थी। ऐसे मौकों पर उषा का मन हो
वह फट पड़े। उनकी कौन-सी परेशानी में वह शामिल न
थी ! इससे बढ़कर भयावह बात क्या हो सकती थी कि ज
को कॉलिज की परेशानियां स्वतन्त्र, निजी और उषा से असम्
लगने लगी थीं और उषा को अपनी घरेलू परेशानियां स्वत
निजी और जगन से असम्बद्ध। उषा इस बात पर बहस कर
चाहती थी; लेकिन जगन जिस तरह दाईं बांह से आंखें ढ
बिस्तर पर पड़ा था, उसमें बराबरी की बहस असम्भव थी।

"इस तरह तो कोई संवाद नहीं हो सकता।' उषा ने उस
तरफ देखते हुए कहा।

'जहां सम्प्रेषण ही समाप्त है, वहां संवाद की क्या तुक
जाती है ?' जगन ने बिना हाथ आंखों पर से हटाए कहा।

उषा का मन हिंसक हो उठा। अन्दर-ही-अन्दर। हमेशा
जगन लेटा-ही-लेटा धीरे से कोई बात पिन की तरह उसे चु

देता और फिर मुंह ढांपकर सोने का अभिनय करने लगता। शादी के बाद से ही वह युद्ध की यह अनैतिक गुरिल्ला प्रणाली अपनाए हुए था। अगर उषा भड़ककर जवाब देती भी, तो उस ओर से या तो कोई प्रतिक्रिया न होती या जब वह उसकी ओर देखता तो उस नजर में पत्थर और बर्फ के सिवा और कुछ न होता। यही कारण था कि उषा अन्दर-ही-अन्दर एक भीषण भड़भड़ाहट से भर जाती।

जगन ने कुछ देर सोने की असफल कोशिश की, फिर उठकर एक सांस में ठंडी चाय पी ली और बोला, 'अब तो घर भी कॉलेज होता जा रहा है।'

'शुक्र है, तुम्हारे लिए अभी कॉलेज ही बना है। मेरे लिए तो यह बा-मशक्कत सी-क्लास कैद है।'

'आने वाले दिन और भी बुरे होंगे। तुम्हें फौरन भूल-सुधार कर लेना चाहिए।'

कुछ गलतियों का कोई भूल-सुधार नहीं होता।' उषा कहती-कहती चाय का प्याला उठा रसोई में चली गई। दोनों ने एक दूसरे का कलेजा कबाब बना दिया था। जगन विरक्ति और विरोध से भरा उषा का जाना देखता रहा। रसोई में कहीं हवा नहीं थी, उजाला बिजली का। उषा का दिमाग तमतमाया हुआ था। प्याला पटक वह गुसलखाने में घुस गई। दरवाजा बन्द करने की कोशिश की; पर लकड़ी बरसात की वजह से फूल गई थी, चटखनी नहीं लगी, बल्कि ज्यादा खींचतान में उषा की उंगली पिस गई।

'हाइ !' उषा दर्द से कराही। उसने उंगली पानी में डुबोने के लिए आस-पास देखा। दोनों बालटियां सूखी पड़ी थीं।

उषा ने अपने को बुरी तरह फंसा हुआ पाया। उसका मन [illegible] गुसलखाने की खिड़की से नीचे कूद जाए या सीढ़ियां [illegible] दौड़ जाए समुद्र तक जो सिर्फ दस मिनट की दूरी पर

था; पर इनमें से कुछ भी करना मुमकिन नहीं था। ऐसे मुश्किल
लमहों में न जाने कितनी बार उषा का मन हुआ है, वह भाग
जाए नंगे पाँव, दूर, इस साढ़े तीन दीवारी के बाहर, पर कहाँ?
इस सवाल के साथ ही अपनी दुनिया का भयावह अकेलापन
उसे वापिस इस खूंटे पर लाकर बांध देता।

उस घर में रूठने के लिए पर्याप्त जगह भी नहीं थी। उषा
वापिस कमरे में गई और मूढ़े पर बैठ वीकली पलटने लगी।
भगत ने लेटे-लेटे ट्रांजिस्टर चला दिया। उसने छः किस्तों पर
यह सत्तानवे रुपये का मीडियम वेव ट्रांजिस्टर खरीदा था।
पहले उसने धीमे से चलाया, फिर पूरे वॉल्यूम पर। आकाश-
वाणी के अनाउन्सर के गले में ध्वनि के साथ धातु भी मिल गई।
'अब आप एक आवश्यक सूचना सुनिए। आज शाम सवा आ
बजे हमारे राष्ट्रपति राष्ट्र के नाम विशेष संदेश प्रसारित
करेंगे।'

उषा से बर्दाश्त नहीं हो सका। उसने उठकर खट् से
ट्रांजिस्टर बन्द कर दिया।

उसने तसल्ली से सोचा, नहीं सुनेगी वह राष्ट्र के नाम
प्रसारित सन्देश। इस राष्ट्र ने उन्हें दिया क्या है? एक कुत्ता
नौकरी, एक आधा-अन्धेरा मकान, घटाऊ की चार छपी
धोतियाँ, लोकलों के धक्के। वह अपने अन्दर कोई राष्ट्र-प्रेम
महसूस नहीं करती। वह किसी के प्रति कृतज्ञ नहीं। जब तक
बाजार में वाजिब दामों पर डालडा, चीनी और मिट्टी का तेल
नहीं मिलने लगता, वह इसी तरह खिलाफ होती रहेगी। वह
एम० ए० पास है, पर इस लम्बे-चौड़े शहर में उसके लिए तीन
सौ रुपल्ली की एक नौकरी तक नहीं। उसने अनुवाद का काम
ढूंढने की कोशिश की, वह उसे नहीं मिला। ट्यूशनें चाहीं,
नहीं मिलीं। उसे इस सुजला, सुफला भूमि से मिला क्या है
सिवाय एक सहमे पुरुष के जो एक तरफ उसका अधूरापन

देता और फिर मुंह ढांपकर सोने का अभिनय करने लगे
शादी के बाद से ही वह युद्ध की यह मर्मांतिक गुरिल्ला प्रणा
अपनाए हुए था। अगर उषा भड़ककर जवाब देती थी, तो
ओर से या तो कोई प्रतिक्रिया न होती या जब वह उसकी
देखता तो उन नजर में पत्थर और बर्फ के सिवा और कुछ
होता। यही कारण था कि उषा अन्दर-ही-अन्दर एक भी
भड़भड़ाहट से भर जाती।

जगत ने कुछ देर सोने की असफल कोशिश की, फिर उ
कर एक सांस में ठंडी चाय पी ली और बोला, 'अब तो घर
तेज होता जा रहा है।'

'शुक्र है, तुम्हारे लिए अभी कॉलेज ही बना है। मेरे लि
तो यह बा-मशक्कत सी-बनाम कैद है।'

'आने वाले दिन और भी बुरे होंगे। तुम्हें फौरन भूल-सुधार
कर लेना चाहिए।'

कुछ गलतियों का कोई भूल-सुधार नहीं होता।' उषा कहती-
कहती चाय का प्याला उठा रसोई में चली गई। दोनों ने एक
दूसरे का कलेजा कबाब बना दिया था। जगत विरक्ति और
विरोध से भरा उषा का जाना देखता रहा। रसोई में वहाँ हवा
नहीं थी, उजाला बिजली का। उषा का दिमाग तमतमाया हुआ
था। प्याला पटक वह गुसलखाने में घुस गई। दरवाजा बन्द
करने की कोशिश की; पर लकड़ी बरसात की वजह से फूल
गई थी, चटखनी नहीं लगी, बल्कि ज्यादा खींचतान में उषा की
उंगली पिस गई।

'आह !' उषा दर्द से कराही। उसने उंगली पानी में डुबोने
के लिए आस-पास देखा। दोनों बालटियां सूखी पड़ी थीं।

उषा ने अपने को बुरी तरह फंसा हुआ पाया। उसका मन
हुआ वह गुसलखाने की खिड़की से नीचे कूद जाए या सीढ़ियां
उतरती हुई दौड़ जाए समुद्र तक जो सिर्फ दस मिनट की दूरी पर

पर इनमें से कुछ भी करना मुमकिन नहीं था। ऐसे मुश्किल
महों में न जाने कितनी बार उषा का मन हुआ है, वह भाग
ए नंगे पांव, दूर, इस साढ़े तीन दीवारी के बाहर, पर कहां?
इ सवाल के साथ ही अपनी दुनिया का भयावह अकेलापन
से वापिस इसी खूंटे पर लाकर बांध देता।

उस घर में रूठने के लिए पर्याप्त जगह भी नहीं थी। उषा
पिछ कमरे में गई और मूढ़े पर बैठ वीकली पलटने लगी।
पन ने लेटे-लेटे ट्रांजिस्टर चला दिया। उसने छः किस्तों पर
ह सत्तानवे रुपये का मीडियम वेव ट्रांजिस्टर खरीदा था।
हले उसने धीमे से चलाया, फिर पूरे वॉल्यूम पर। आकाश-
वाणी के अनाउन्सर के गले में ध्वनि के साथ धातु भी मिल गई,
'अब आप एक आवश्यक सूचना सुनिए। आज शाम सवा आ
बजे हमारे राष्ट्रपति राष्ट्र के नाम विशेष संदेश प्रसारित
करेंगे।'

उषा से बर्दाश्त नहीं हो सका। उसने उठकर खट् से
ट्रांजिस्टर बन्द कर दिया।

उसने तसल्ली से सोचा, नहीं सुनेगी वह राष्ट्र के नाम
प्रसारित सन्देश। इस राष्ट्र ने उन्हें दिया क्या है? एक कुत्ता
नौकरी, एक आधा-अन्धेरा मकान, खड़ाऊ की चार छपी
धोतियां, सोरलों के धक्के। वह अपने अन्दर कोई राष्ट्र-प्रेम
महसूस नहीं करती। वह किसी के प्रति कृतज्ञ नहीं। जब तक
बाजार में वाजिब दामों पर डालडा, चीनी और मिट्टी का तेल
नहीं मिलने लगता, यह इसी तरह खिलाफ होती रहेगी। वह
एम० ए० पास है, पर इस लम्बे-चौड़े शहर में उसके लिए तीन
सौ रुपल्ली की एक नौकरी तक नहीं। उसने अनुवाद का काम
ढूंढने की कोशिश की, वह उसे नहीं मिला। ट्यूशनें चाहीं, वे
नहीं मिलीं। उसे इस सुजला, सुफला भूमि में मिला क्या?
सिवाय एक समूचे पुरुष के जो एक तरफ उसका अधूरापन

हैरान और फिर मुंह फेरकर सोने का अभिनय करने लग
जाती है जब से ही यह कुछ भी यह अर्थहीन दुनिया प्रा
करवाता हुए था। अगर उषा चहककर बतला देती थी, तो
ओर से या तो कोई प्रतिक्रिया न होती या जब वह उसकी ओ
देखता तो उस नजर में उपेक्षा और व्यंग्य के सिवा और कुछ
होता। यही कारण था कि उषा अन्दर-ही-अन्दर एक तीख
छटपटाहट से भर जाती।

अजय ने कुछ देर सोने की असफल कोशिश की, फिर उठ
कर एक सांस में ढेरी बात पी ली और बोला, 'अब तो घर भी
बोर होता जा रहा है।'

'ठीक है, तुम्हारे लिए अभी काबिल ही क्या है। मेरे लिए
तो यह का-मजबूरी की-जाल केर है।'

'जाने पाले किस ओर भी बुरे होंगे। तुम्हें फौरन सूत-सुधार
कर लेना चाहिए।'

'कुछ गलतियों का कोई सुधार-सुधार नहीं होता।' उषा बहुरी-
बहुली चाय का प्याला उठा रसोई में चली गई। दोनों ने एक
दूसरे का कलेजा कबाब बना दिया था। अजय विरक्ति और
विरोध से भरा उषा का जाना देखता रहा। रसोई में कहीं हवा
नहीं थी, उजाला बिजली का। उषा का दिमाग तमतमाया हुआ
था। प्याला पटक वह गुसलखाने में घुस गई। दरवाजा बन्द
करने की कोशिश की; पर लकड़ी बरसात की वजह से फूल
गई थी, चटखनी नहीं लगी, बल्कि ज्यादा खींचतान में उषा की
उंगली छिल गई।

'आह !' उषा दर्द से कराही। उसने उंगली पानी में डुबोने
के लिए आस-पास देखा। दोनों बाल्टियां सूखी पड़ी थीं।

उषा ने अपने को बुरी तरह फंसा हुआ पाया। उसका मन
हुआ वह गुसलखाने की खिड़की से नीचे कूद जाए या सीढ़ियां
उतरती हुई दौड़ जाए समुद्र तक जो सिर्फ दस मिनट की दूरी पर

था; पर इनमें से कुछ भी करना मुमकिन नहीं था। ऐसे मुश्किल
लम्हों में न जाने कितनी बार उषा का मन हुआ है, वह मुँह
उठाए नंगे पांव, दूर, इस साढ़े तीन दीवारी के बाहर, पर कहां!
इस सवाल के साथ ही अपनी दुनिया का भयावह अकेलापन
उसे वापिस इस खूंटे पर लाकर बांध देता।

उस घर में रूठने के लिए पर्याप्त जगह भी नहीं थी। उप-
वापिस कमरे में गई और मूढ़े पर बैठ वीकली पलटने लगी।
श्यन ने लेटे-लेटे ट्रांजिस्टर चला दिया। उसने छः किस्तों पर
यह सतानवे रुपये का मीडियम वेव ट्रांजिस्टर खरीदा था।
पहले उसने धीमे से चलाया, फिर पूरे वॉल्यूम पर। आकाश-
वाणी के अनाउन्सर के गले में ध्वनि के साथ धातु भी मिल गई,
'अब आप एक आवश्यक सूचना सुनिए। आज शाम सवा आठ
बजे हमारे राष्ट्रपति राष्ट्र के नाम विशेष संदेश प्रसारित
करेंगे।'

उषा से बर्दाश्त नहीं हो सका। उसने उठकर खट् से
ट्रांजिस्टर बन्द कर दिया।

उसने तसल्ली से सोचा, नहीं सुनेगी वह राष्ट्र के नाम
प्रसारित सन्देश। इस राष्ट्र ने उन्हें दिया क्या है? एक कुत्ता
नौकरी, एक आधा-अन्धेरा मकान, खटाऊ की चार छपी
धोतियां, लोकलों के धक्के। वह अपने अन्दर कोई राष्ट्र-प्रेम
महसूस नहीं करती। वह किसी के प्रति कृतज्ञ नहीं। जब तक
बाजार में वाजिब दामों पर डालडा, चीनी और मिट्टी का तेल
नहीं मिलने लगता, वह इसी तरह खिलाफ होती रहेगी। वह
एम० ए० पास है, पर इस लम्बे-चौड़े शहर में उसके लिए तीन
सौ रुपल्ली की एक नौकरी तक नहीं। उसने अनुवाद का काम
ढूंढने की कोशिश की, वह उसे नहीं मिला। ट्यूशनें चाहीं, वे
नहीं मिलीं। उसे इस सुजला, सुफला भूमि में मिला क्या?
सिवाय एक समूचे पुरुष के जो एक तरफ उसका अधूरापन

कुचलता जा रहा था, तो दूसरी तरफ उसका साबुउस
उषा को भगा, वह उस पर बुरी तरह आश्रित है। यहां त
उसकी राय के बिना वह चप्पलें भी नहीं खरीद सकती
पालतू निर्भरता उसे असह्य थी। यह बन्द कमरे की
निष्क्रियता उसे असम्भव जड़ता में धंसाए जा रही थी।

लेकिन जब जगन ने अपने हाथों घाय बनाकर दोनों
गिलास मेज पर ला टिकाए, वह झटके से अपनी दुनिया में
आई। क्षण-भर पहले की वह तलखी, वह लड़ैत तेवर, अन्द
रूठन सब जगन की इस एक हरकत से परास्त हो गई। उ
अपनी सफाई देने के लिए मुंह खोला, फिर चुप हो गई।
जोगेन्दर को और नाराज नहीं करना चाहती थी। जगन
मूड जब ठीक हो जाता था, उसमें कोई पिछली शिकायत बा
नहीं रह जाती थी।

जगन उसके एकदम पास आकर बैठ गया। उसके घुट
पैर अपनी टांगों का वजन फैलाए।

'दरअसल हमारे बीच सारी लड़ाई बाहरी वजहों से है
इन्हें मैं यों मसलकर रख दूंगा।' जगन ने चुटकी बजाई, 'किस
एडवरटाइजिंग एजेन्सी में विजुअलाइजर या अकाउंट्स ऑफि
सर हो जाऊंगा। जब गुरु शर्ट पहन और जोडियाक टाई लगा
कर वी० आई० पी० का ब्रीफकेस हाथ मे लेकर निकलूंगा
लाखों के ऑर्डर एक दिन मे पीट लाऊंगा, फिर तुम्हारे लिए
हैंडलूम हाउस से एक दर्जन चौड़े बार्डर की खूबसूरत साड़ियां
लाऊंगा, जिन्हें पहनकर तुम बिलकुल शर्मिला टैगोर लगोगी,
फिर हम इन बड़े-बड़े रेस्तरां मे बैठकर नंगी औरतों के नाच
देखा करेंगे और खुद-ब-खुद सम्भ्रान्त वर्ग में शामिल हो
जाएंगे।'

. ऐसे बोलते हो, मेरी समझ में नहीं आता मुझे
...द . या दुःखी। मुझे लगता है तुम अपने आप

इतने खुश नहीं हो। तुम मुझे खुश करना चाह रहे हो।

'इसमें बुराई क्या है? क्या मुझे तुम्हें खुश नहीं करना चाहिए?'

'तुम्हें अपने प्रिंसिपल को खुश करना चाहिए।'

'क्यों, ताकि मेरी नौकरी बरकरार रहे। उस प्रिंसिपल लुच्चे ने मुझे कलक्टरी दे रखी है या वजीफा बांधा हुआ है या मुझे विदेश भेज रहा है?'

'तुम फिजूल इस शहर से चिपके रहना चाहते हो। दिल्ली चलो न, हम दोनों को एक-से-एक बढ़िया नौकरियां मिल जाएं तो कहना।'

'उफ! मुझे तुम्हारी अक्ल पर हैरानी होती है। तुम भी हमारे यहां के करोड़ों मूर्खों की तरह सोचती हो कि दिल्ली में हर मुसीबत का हल है, हर शिकायत की सुनवाई। इस व्यवस्था में आपको अपना भविष्य बनाना है, तो एक तोप पैदा कीजिए, ताकत की तोप। कोई मोटा व्यापारी, कोई धाकड़ संसद-सदस्य, मंत्री जी का कोई बाल-सखा, ऐसी कोई तोप ढूढ़िए और हिन्दुस्तान के नक्शे पर छा जाइए, फिर भूल जाइए कि देश में एक कानून-व्यवस्था है, जिसके हाथ लम्बे कहे जाते हैं। कानून जनता के लिए है, जनार्दन के लिए नहीं। मूर्ख-से-मूर्ख योजना लाइए। उसे पूरा करने के लिए आपको सब सुविधाएं दी जाएंगी। बरसों आराम से रेत से तेल निकालते रहिए, बंजर में ट्यूबवेल लगवाइए, फिल्लम बनाइए, अभिनन्दन-ग्रन्थ निकालिए, मालामाल हो जाइए।'

'यही तो तुम्हारे साथ मुसीबत है। तुम हर समस्या का राष्ट्रीय निदान चाहते हो। मुझे तो एक छोटी-सी बात समझ आती है कि न सही चौड़ी सड़क हमें अपने लिए एक छोटी-सी पगडंडी बनानी है। यह भीमकाय शहर और जेब में महज तीन सौ रुपये। यहां रहकर आखिर क्या कर लोगे, ज्यादा-से-ज्यादा

पच्चीस रुपये प्रति वर्ष प्रगति ?'

'दिल्ली जाकर चालीस रुपये प्रति वर्ष की प्रगति करूंगा, तो तुम संतुष्ट हो जाओगी ?'

'पर दिल्ली में कमाने के हजार ढंग हैं। खाली समय में हम अनुवाद कर लेंगे, रेडियो के लिए लिख लेंगे, ट्यूशन कर लेंगे।'

'मैं इस गधेगिरी के लिए तैयार नहीं हूं। मैं यहीं रहूंगा, सामंत और शाह से दम ठोककर लड़ूंगा। होश में नहीं आएंगे तो कॉलेज में स्ट्राइक करवा दूंगा।'

'फिर तो तुम कहीं नहीं टिकोगे।'

'और मेरी वणिक-पत्नी मुझे छोड़कर दिल्ली चली जाएगी।'

'तुम सिर्फ मुझे दुःखी करना चाहते हो। तुम समझते हो हर बात मैं अपने स्वार्थ के लिए ही कहती हूं। मेरी तरफ से तुम यह भी छोड़ दो। हम दोनों मैरिलीन मनरो की तरह नींद की गोलियां खाकर सो जाएं।'

'मैं तो ऐसे नहीं सोचता। मैं यहीं रहूंगा। लड़ाई के बीचों-बीच और अगर तुम इस तरह एक कदम पीछे हटकर खड़ी होने का इरादा करोगी, तो मैं तुमसे दस कदम पीछे हट जाऊंगा।'

'और अगर मैं एक कदम आगे बढ़ूंगी तो…?'

'तो…तो मैं तुम्हारे ऊपर हावी हो जाऊंगा, यों!' जगन ने उषा को मूढ़े पर से उठाकर बिस्तर पर डाल लिया।

जगन को पता ही नहीं चला था। उसके एक-एक शब्द और … पर देशमुख और वत्सराज ने अपने कान और आंखें … हुई थीं।

घटना के बाद उसने तो बस इतनी सतर्कता बरती थी

कि वह वक्त पर क्लास में जाता और वक्त पर क्लास छोड़ता। उसने छात्रों से बहुत बातचीत करनी भी छोड़ दी थी। पहले जहां वह क्लास में चुलबुले लतीफे छोड़ देता था, अब सिर्फ पाठ्यपुस्तक से ताल्लुक रखता। अगर किसी लड़के को वह चंचल पाता, तो ज़बरदस्ती एक गम्भीर और निष्प्राण मुद्रा में उसे देख ठंडा कर देता। अपने अन्दर भी अब उसे पढ़ाने के प्रति कोई उत्साह महसूस नहीं होता। उसे लगता वह युगों-युगों से यों ही केड़िया कॉलिज के गलियारों में रजिस्टर बगल में दबाए घूमता रहा है। उसे लगता जीवन की सारी खुशियां उसे उलांक-उलांकर चली जाएंगी और वह वहीं फंसा रह जाएगा—तीन सौ—पच्चीस—छह सौ के कुचक्र में। उसकी बुशशर्ट के कॉलर घिसते चले जाएंगे, उसकी बीवी का वजन घटता चला जाएगा, वह एक फटीचर की मौत मर जाएगा।

पर इस सब की नौबत नहीं आई।

चौदह मार्च की सुबह थी। जोगेन्दर और उषा आज खासे उत्साह में थे। आज शाम को फ्रन्टियर मेल से उनकी सीटें रिज़र्व थीं। वे गर्मियों की छुट्टियों में पंजाब जा रहे थे। जगन उषा का हाथ पकड़ उसे वे सारी जगहें और चीजें दिखाना चाहता था *जिनसे उसका लड़कपन जुड़ा था।*

पिछली शाम उन दोनों ने बड़े चाव से घर ले जाने के लिए *छोटी-छोटी चीजें ली थीं—प्लास्टिक के डब्बे, तीन जालियों* वाली चलनी, मिट्टी का तेल लगाने वाला ऑटोमैटिक पम्प, मुड़कर छोटी-सी हो जाने वाली छतरी, मां के सूट के लिए पॉप-लिन। इरादा यह था कि जोगेन्दर दो-ढाई बजे तक घर आ जाएगा। उषा तब तक सामान बांधकर परांठे और आलू-गोभी बना लेगी। वहीं वे दोपहर के खाने में खा लेंगे, वहीं रात के लिए टिफिन में डालकर साथ ले जाएंगे।

से कुछ किताबें जरूर इशू करवा ले। वे रास्ते में पढ़ने बनेंगे।

आज पढ़ाई कुछ नहीं होनी थी। ऊपर हॉल में छात्र ए छोटी-सी कैंपाकोला पार्टी करते थे और नीचे टीचर्स रूम संक्षिप्त-सी पार्टी होती थी। बहुत से प्राध्यापक पार्टी अटैंड नहीं करते थे, सिर्फ रजिस्टर में दस्तखत कर चले जाते थे। साहनी ने लायब्रेरी से चार किताबें इशू करवाईं और मस्ती भरा लिफ्ट में जाने के बजाए सीढ़ियां उतर गया। सामने दो महीने की बेफिक्री थी। पिछले मंगलवार की स्टाफ-मीटिंग उसके सिर पर छुट्टियों में कोई एक्स्ट्रा काम नहीं थोपा गया था। चंडीगढ़ से वह शिमला जाना चाहता था। जहां उसके ए प्रिय चाचा उसे हर साल आमंत्रित करते थे और हर सा कॉलिज के किसी-न-किसी झंझट के मारे वह जा नहीं पाता था। इस महीने किसी तरह उसने उषा के लिए एक चूड़ीदार पाजामा कुर्ता भी सिलवा लिया था। वह जाकर मां को चकित कर देना चाहता था, 'यह देखो मां! पंजाब दी कुड़ी।' इस पोशाक में उषा बिलकुल लड़की लगती थी और स्मार्ट। रेल में दिन-भर सोने का इरादा वह पहले से ही कर चुका था। चंडीगढ़ में उस को यूनीवर्सिटी कैम्पस दिखाना था। न्यू मार्केट की तली हु मछली चखानी थी और सिनेमा न दिखाने की उसकी शिकायत एकदम मिटा देनी थी। घर में एक बात का बड़ा आराम था। घर पहुंचकर वह जेब में जितने पैसे होते सब मां को थमा देता फिर उनसे जितनी मर्जी हो, मांग लेता। मां ने कभी हिसाब नहीं किया।

स्टाफ-रूम में गहमा-गहमी थी। दत्ताराम टेबिल पर प्याले लगा रहा था। समोसे, चिवड़ा और गुलाबजामुन बड़ी प्लेटों में पहले से ही टेबिल पर रखे थे। स्टाफरूम इस वक्त काफी भरा-भरा लग रहा था।

तभी सब अटेन्शन की मुद्रा में खड़े हो गए। प्रिंसिपल सामन्त अन्दर आए। साहनी को आज भी यही लगा कि उनके सूट की चमक और बालों की सफेदी में कोई संगति नहीं बैठ रही है। पता नहीं अपने हाई स्कूल सर्टीफिकेट में सामन्त ने अपनी उम्र क्या लिखा रखी है, साहनी ने सोचा। अपनी कुर्सी से सामन्त ने वर्षों का पिटा-पिटाया भाषण आज फिर दोहरा दिया, 'मैं उम्मीद करता हूं आप लोग आने वाले वर्ष में अधिक श्रम, उत्साह और लगन से काम करेंगे। लेक्चर तैयार कर क्लास में जाएंगे। वक्त के पाबन्द होंगे और अपने-अपने विषय में शोध-दृष्टि डेवलप करेंगे।'

साहनी ने अपने बराबर खड़े मनहरशाह को आंख मारी, 'बिलकुल वही है' फिर ध्यान मग्न होने की मुद्रा बना ली।

चाय के दौरान कई प्राध्यापक सामन्त से बातचीत के बहाने उसकी खुशामद करते रहे।

सामन्त बोले, 'डॉक्टर नित्यानन्द, मिसेज रमैया, देशमुख, *तुम लोग एक जून से कॉलेज अटेंड करना। एडमिशन का काम* इस साल तुम्हीं को संभालना है। यह ध्यान रखना, इस साल एडमिशन से पहले जो इन्टरव्यू लिए जाते हैं, उनमें बहुत खबरदारी बरतनी है। ये एण्टीसोशल एलीमेन्ट उसी समय प्रवेश पा जाते हैं, फिर पूरे साल तंग करते हैं। इस बार डॉक्टर वत्सराज भी उपस्थित रहेंगे। मैंने उनसे कह दिया है।'

सामन्त के निकलने के बाद विट्ठल आया। हाथ में रिसीवर्ज सिगनेचर की छोटी कॉपी और कुछ लिफाफे थामे।

उसने एक-एक कर बांटने शुरू किए।

देशमुख ने दस्तखत कर अपना लिफाफा खोला ही था कि खुशी से उछल पड़ा। उसकी कार्य-कुशलता और लगन को देखते हुए आगामी पन्द्रह जून से उसे सीनियर-पे-स्केल में नियुक्त किया जा रहा था।

डॉक्टर शिवशंकर रीडर से प्रोफेसर बना दिए गए थे।

तभी चिट्ठी आखिरी लिफाफा में साहनी के पास आया। साहनी के देखकर से उसे लिफाफा पकड़ा यह बना गया। जल्दबाजी में साहनी ने एक तरह से पूरा लिफाफा फाड़ डाला।

छोटा-सा पत्र था, 'कार्यकारिणी समिति का यह संयुक्त निर्णय है कि केन्द्रिय कॉलिज को अब आपकी सेवाओं की आवश्यकता नहीं है। आगामी पन्द्रह जून, १९.. से आप सेवा-मुक्त किए जाते हैं।'

साहनी ने पत्र के ऊपर ध्यान से देखा, उसी का नाम था। लिफाफे पर भी।

उसने पत्र फिर पढ़ा। उसे यकीन नहीं हुआ।

तब तक देशमुख और शाह उसके करीब आ गए, 'क्या लिखा है यार ! सीनियर स्केल मिल गया क्या ?' देशमुख ने चिट्ठी लेने के अन्दाज में हाथ बढ़ाया।

साहनी ने खौलती आँखों से उन्हें देखा और चिट्ठी हाथ में भुचड़ता सामन्त के कमरे में दाखिल हो गया।

सामन्त उस समय पानी से दो कैप्सूल निगल रहे थे। सुबह से आज उन्हें दस्त हो रहे थे।

उन्हें साहनी का यों धड़धड़ाते हुए अन्दर आना बिलकुल अच्छा नहीं लगा।

उन्हें यह तो अन्दाजा था कि आज साहनी उनके पास आएगा; पर यह नहीं कि इस तरह। उन्होंने सोच रखा था कि जब भय और दीनता से भरा साहनी उनसे एक और अवसर, उपकार आदि की अपील करेगा, तो वह उसे उत्तरदायित्व पर एक लम्बा भाषण देकर कहेंगे, 'यहाँ तो नहीं, पर कांदिवली में एक कॉलेज है, वहाँ मैं कह-सुनकर तुम्हें जगह दिलाने की कोशिश करूंगा।' आज की उनकी दिली तमन्ना थी, साहनी को

ठा होते देखने की; पर यह साहनी को बिना उसकी अनुमति के कुर्सी पर आकर बैठ गया, न तो सहमा हुआ था और न दीन।

साहनी ने कहा, 'मैं जानना चाहता हूं, आपने मुझे यह नोटिस क्यों भिजवाया है?'

'मैं आपको जवाब देना जरूरी नहीं समझता। आपको जो कहना है, मैनेजर से जाकर कहिए और सुनिए उनसे जरा तमीज से पेश आइएगा। आपकी यह तेजी और जंगलीपन भी इस नतीजे का कारण हैं।'

'कारण की ऐसी-की-तैसी। आपको मुझे जवाब देना पड़ेगा। आपने तीन साल मेरा काम देखा है। मैं स्थायी नौकरी पर हूं। आप बिना चार्जशीट दिए मुझे अलग नहीं कर सकते।'

सामन्त ने कॉलेज के नियमों की फाइल खोलकर उसके आगे रख दी। बारहवें नियम का चौथा उपनियम था 'महाविद्यालय की प्रबन्ध समिति प्रिंसिपल की रिपोर्ट पर किसी भी प्राध्यापक को तीन महीने का अग्रिम वेतन दे कार्य मुक्त कर सकती है।'

'आप लायब्रेरी का अपना एकाउंट साफ करके आइएगा, अन्यथा आपके वेतन से उसके ड्यूज काटे जाएंगे। लॉकर की चाबी ऑफिस में जमा करनी होती है।'

साहनी इस अपमान से तिलमिला गया। यह पोंगा बूढ़ा इन तीन सालों में कितनी तरह से उसे तंग करता रहा है और अब यह अपनी तीनों ठोढ़ियां हिलाता हुआ उसे छोड़कर चले जाने के नियम समझा रहा है।

जोगेन्दर साहनी ने सामन्त की ही मेज पर पड़ा एक कागज का टुकड़ा उठाया और उस पर लिखा, 'मैं कार्यकारिणी-समिति के इस पत्र की भर्त्सना करते हुए इसका विरोध करता हूं और इसे लेने से इनकार करता हूं। प्रिंसिपल सामन्त के अभद्र, पक्ष-

पातपूर्ण और दमनशील व्यवहार के विरोध में मैं अपने प्राध्यापक पद से तत्काल त्याग-पत्र दे रहा हूं, इसे अनिवार्य व अंतिम समझा जाए।'

सामन्त ने कागज पढ़ा और कहा, 'इसका मतलब क्या निकलता है, तुम्हें पता है। पहले तुम्हें प्रबन्ध-समिति पूरा प्रॉविडेंट फण्ड देने वाली थी, अब उससे भी जाओगे।'

साहनी तैश में था, 'आइ शिट ऑन यू एंड योर पी० एफ०....।'

सामन्त ने अतिरिक्त ताकत से दरवाजा खोला और बाहर निकलकर उसे भड़ाक् बजा दिया।

सॉकर खाली कर अपना छिटपुट सामान उसने पॉलिथीन की एक थैली में भर चाबी गोडबोले की टेबिल पर पटक दी और बिना किसी से बात किए बाहर निकल आया।

थकामांदा हुआ जब वह घर में घुसा, उषा ने विजेता की मुद्रा में कहा, 'लो खाना भी तैयार है। तुम बिलकुल ठीक वक्त पर आए।'

वह बरस गया, 'ऐसी-की-तैसी तुम्हारे खाने की! मेरे सामने यों बाल बिखेरकर, चुड़ैल की तरह मत आया करो, समझी।'

उषा सवेरे से ही काम में लगी रही थी। सब कपड़े इस्त्री कर करके उसने पैकिंग की। घर में टूथपेस्ट खतम था और शीशा तड़का हुआ। धूप में बाजार जाकर वह सब लाई। आकर जब उसने खाना पकाने के लिए स्टोव जलाया, तो देखा वह रह-रहकर तेल फेंक रहा है। जलते-जलते वह भक् से लपक देता, फिर बुझ जाता। सुलगते स्टोव में पिन डालने से वह आज जलते-जलते बची थी। आगे के उसके कुछ बाल जल भी गए। इतनी अड़चनों से गुजरकर उसने काम पूरा कर लिया। इसी-

लिए वह इस क्षण अपने को बहुत सफल मान रही थी। उसने ध्यान ही नहीं दिया कि अभी तक वह नहाई नहीं है। पसीना सुखाने की गर्ज से अभी वह रसोई से हटकर यहां आई थी।

उसे लगा बात करने का यह कोई तरीका नहीं है, 'क्यों, तुमने बड़ नौकर-चाकर रखे हुए हैं मेरे लिए, जो सज-धजकर तुम्हारा इन्तजार किया करूं।'

'रहो इससे भी बदतर और मरो।' जगन ने पॉलिथीन की थैली पलंग पर पटक दी।

मन-ही-मन उसे भीषण गालियां देती उषा गुसलखाने में गई। वहां पानी नहीं था। उसने घड़े में से एक मग पानी निकालकर मुंह धोया, धोती से पोंछा और हाथ से बालों को समेटती हुई कमरे में आई। कुछ देर पहले की उमंग इस वक्त बिलकुल बुझ गई थी। विरोध-मुद्रा में जगन की ओर देखकर उसे लगा आज फिर कुछ हो गया है। संवाद स्थापित करने की उसने एक और कोशिश की, 'यह क्या लाए हो, किताबें ?'

उसने देखा थैली में जगन की डायरी थी, पेन, पेंसिल और प्लास्टिक का गिलास। डायरी के पन्नों में उषा के हाथ की लिखी दर्जनों चिटें दबी पड़ी थीं, जो वह खाने के साथ भेज देती थी।

तब जगन ने कहा था, 'मैं नौकरी छोड़ आया हूं।'

'हटो !'

'दे सैंक्ड मी ! मैंने ऑर्डर लेने से इनकार कर दिया और विरोध में इस्तीफा लिखकर दे दिया। वे हरामजादे सामन्त और शाह, मैं उनका मर्डर करवा दूंगा। डे आर डर्टी पीपल।'

उषा ने हताश और ठंडी आवाज में कहा, 'टिकटें वापिस कर दो, अब क्या जाएंगे ?'

जगन ने जल्दी-जल्दी सोचा था, दिमाग में कुछ भी साफ नहीं था, 'टिकटों के पैसों से कितने दिन रह लेंगे। अच्छा हो,

अगर मकान खाली करके ही बंगलौर जाएं।'

'और वहां बैठकर क्या करोगे ?' उषा ने कहा। उसे यों हारे सिपाही की तरह घर में घुसना स्वीकार नहीं था।

'मेरी बेकारी उनके लिए कोई नई चीज नहीं है। जीवन के पच्चीस साल मैंने बेकारी में ही गुजारे हैं।'

'पर मैं तो पहली-दूसरी बार जा रही हूं वहां पर। मैं सम्मानपूर्वक जाना चाहूंगी।'

'नौकरी को तुम बहुत बड़ा सम्मान समझती हो और पैसे को बहुत बड़ी ताकत। अभी तक मेरी नौकरी से मेरे मां-बाप को क्या फायदा पहुंचा है ?'

'पर उन पर बोझ बन कर...।'

एकाएक जगन गर्म हो गया, 'मैं मर गया हूं, अपाहिज हो गया हूं। तुम तो ऐसे बोल रही हो, जैसे तुम्हारी सारी इज्जत टट्टी के रास्ते निकल गई है।'

अपने प्रति भाषा के इस वीभत्स प्रयोग से उषा बौखला गई, 'अनपढ़ों की तरह बोलते हो तभी तो निकाले गए। जो अपनी औरत की इज्जत नहीं कर सकता, वह खाक नौकरी करेगा ! लानत है !'

जगन को महसूस हुआ वह एक अजनबी औरत से लड़ रहा है। उसने विरक्ति और वितृष्णा से उषा को तरफ देखा। वह इस समय कितनी आक्रामक और अनाकर्षक लग रही थी। उसे आश्चर्य हुआ, उसने कैसे इस वहशी औरत से कब शादी कर ली, जो इस वक्त बैठी अपनी दाल-रोटी के लिए चीख-पुकार कर रही है। उसका मन हुआ अपनी अटैची उठा वह निकल जाए। इस औरत, इस मकान और इस शहर की हदों से दूर। उषा ने आज उसे जीवन के सबसे नाजुक लमहे में अकेला छोड़ दिया था।

उसने ठंडी आवाज में कहा, 'अगर मुझे पता होता, ये लोग

सौ रुपये तुम्हारे लिए इतने बड़े हैं, तो मैं बहुत पहले सामन्त और शाह के तलुवे चाटना शुरू कर देता। तुमने, पता नहीं कैसे मुझे यह इम्प्रेशन दिया था कि तुम एक अलग किस्म की लड़की हो।'

'तुम सोचते हो मैं रुपये के लिए लड़ रही हूं ? तुम मुझसे बोल कैसे रहे हो ? ऐसे कोई नौकरों तक से नहीं बोलता।'

उषा फूटकर रो पड़ी।

'देखो, मैं बहुत परेशान हूं। तुम्हें इस तरह मेरी परेशानी बढ़ानी नहीं चाहिए। तुम बताओ, मुझे क्या करना चाहिए था ? मैंने सोचा था, तुम्हें ऐसी बातों से कोई फर्क नहीं पड़ेगा।'

'सारा फर्क क्या मुझे ही पड़ता है। तुम क्या सिर्फ मेरे लिए नौकरी की यातना झेलते थे ? शादी न हुई होती, तो क्या काम न करते ?'

'तुम क्या जस्टिफाई करना चाह रही हो ?'

'तुमसे बराबरी का तर्क करना मुमकिन ही नहीं है। तुम मेरा पाइन्ट समझना ही नहीं चाहते।'

'तुम यही कहना चाहती हो कि मुझे नौकरी से हर कीमत पर चिपके रहना था और अब अगर निकाल दिया गया हूं, तो अगली नौकरी में होश से काम करूं।'

'डिस्टॉर्शन कोई तुमसे सीखे ! पता नहीं तुम जान-बूझकर ऐसा कर रहे हो या दूसरे की बात समझने की तुम्हारी क्षमता ही खत्म हो गई है।'

जगन के चेहरे पर चुप्पी के साथ-साथ अन्तिम विचार-सा प्रकट हुआ, 'मेरी गलतियों या उत्तेजनाओं की सजा तुम रो-रोकर भुगतो, यह मैं कभी नहीं चाहूंगा। तुम चाहो, तो हम किसी वकील से सलाह कर सकते हैं।'

आतंक से जड़ उषा ने जगन की ओर देखा, निर्जी क्षणों में

इतना उत्कट, इतना कोमल यह आदमी इस वक्त कि...आसानी से उसे प्रताड़ित कर रहा था।

'अपने आपको तुम हर समय परफेक्ट सिद्ध करना चाहते रहते हो। तनाव में भी तुम बेदाग और महान रहना चाह रहे हो।'

यह भद्दा शब्द पहली बार उन दोनों के बीच आया था। दोनों अन्दर-ही-अन्दर कांप गए।

'उषा! मैं बहुत बुरा आदमी हूं, निकम्मा हूं। बताओ, मैं क्या कर लूं कि तुम और हम हिस्सेदारी महसूस करें?'

'तुमने क्या सोचा है?'

'यही कि अगर एक रोटी हुई, तो आधी-आधी खाएंगे। न हुई तो तुम्हें छाती से सटाकर सो जाएंगे।'

बात की अव्यवहारिकता पहचानते हुए भी उषा जड़ों तक हिल गई।

जगन ने उषा को कसकर अपने से सटा लिया। आंखों के दोनों जोड़े कोमल हो आए।

दो

उषा के पिता का तबादला इस बीच मथुरा हो गया था। तय यह हुआ कि दोनों पहले उषा के घर जाएंगे, मथुरा, फिर जगन के घर, चंडीगढ़। इसी रेल टिकट पर वह तीन दिन के लिए यात्रा ब्रेक कर सकते थे। चंडीगढ़ रहकर ही आगे के लिए सोचा जा सकेगा।

मकान खाली कर उन्होंने मकान-मालिक के सुपुर्द कर दिया। इस महीने का पूरा किराया मकान-मालिक ने डिपॉजिट में से यह कहकर काट लिया कि उन्हें पूर्व-सूचना देनी चाहिए थी। लिहाजा उन्हें दो महीने का डिपॉजिट दो सौ रुपये वापस

मले।

रास्ते में उषा ने जगन को दिन में सोने नहीं दिया। उसे लग रहा था अगर जगन लेट गया तो उदास हो जाएगा। वह इस तरह अपनी उदासी का इलाज भी ढूढ़ रही थी। वे अपने-अपने बचपन की बातें करते रहे।

जगन को उस समय की बातें भी बड़ी अच्छी तरह से याद थीं, जब वह सिर्फ चार साल का था। अपने गांव ब्रह्मवाल से वह दगन गया था, मुण्डन कराने। उसे याद है, उसके सातों चाचा, दादी, बाबा, मां और पिताजी सब साथ थे। एक चाचा तो उससे भी छोटा था और पडाव पर कभी वह अपनी मां का दूध पीता था, तो कभी जगन की मां का। जगन के कुर्ते को बसन्ती रंग में रंग दिया गया था। सफेद पाजामे के साथ उसकी पोशाक खूब फब रही थी। दगन से दो मील उत्तर में बाबा का मन्दिर था, जहां उनके खानदानी पुजारी के संरक्षण में उसका मुण्डन होना था। बैलगाड़ी में बच्चों से घिरे-घिरे जगन सो गया। उसे सोते समय कपड़ा चूसने की आदत थी। उसके मुंह में अपने कुर्ते का छोर आ गया, जिसे वह देर तक निगलता रहा। गाड़ी जब मन्दिर के आगे रुकी जगन की मां उसकी तरफ देखकर चिहुंक पड़ी। उसने अपना आधा कुर्ता चबा-चबाकर गायब कर दिया था।

छोटा लड़का होने के कारण वह घर का सारा सौदा लाकर देता था। हिसाब में हेरा-फेरी करने की आदत उसे तभी पड़ी थी। उसे याद है, नकोदर में सब्जी मंडी में वह घंटों दुकानदारों से मोल-भाव करता रहता। अपनी वाक्-पटुता से दो-चार आने की वह किफायत कर लेता, लेकिन घर पर वह बाजार-भाव से सब्जी खरीदी दिखाता। उन दो-चार आनों को चोरी-छुपे खर्च करने का थ्रिल अवर्णनीय होता। सिर्फ एक बार वह पकड़ा गया था। मां ने उसे घी लेने भेजा था। घी एक ही दुकान से हमेशा

आया करता था। उसने बड़ी कोशिश की, लेकिन वो बात किसी तरह भी बात हजम करने को तैयार नहीं हुआ। तब हार-कर उसने छटांक-भर घी कम खरीदा और माँ को पूरे सेर बता-कर दाम पकड़ा दिया। दुकानदार को जरूर शक हो गया होगा। शाम को उसके पिता जब बाजार से गुजर रहे थे, उसने उन्हें आवाज देकर बुलाया। हाल-चाल पूछने के बाद उसने कहा था, 'घी ले लो लालजी साहब! बहुत उम्दा आया है।' जगन के पिता बोले, 'नहीं जी, आज ही तो लड़का सेर घी ले गया है।' इससे ज्यादा बातचीत नहीं हुई, किन्तु दोनों ही समझ गए कि बच्चे ने कोई शरारत की है। घर आकर पिताजी ने उससे कुछ नहीं कहा था, लेकिन उसे सुनाते हुए माँ से कहा, 'जगन को सारा दिन बाजार न दौड़ाया करो। इसके पढ़ने-लिखने की उम्र है। दुकानदारों से हुज्जत करना बच्चा अच्छा नहीं लगता।'

मन ही-मन जगन सहम गया था। महीनों वह फिर हेरा-फेरी करने की हिम्मत नहीं जुटा पाया।

उषा कभी मथुरा लम्बे समय के लिए नहीं रही थी। उसकी दादी बाबा और बुआएं मथुरा में थीं। पापा की छुट्टियों में वे मथुरा जाया करते थे। सतघड़ा में काफी चढ़ान पर उनका घर का मकान था। मथुरा जाने से माहौल में जो रद्दोबदल हो जाता था वह उषा को अच्छा लगता था। नहीं तो यहाँ दिल्ली में हर वक्त जैसे स्कूल घुसा रहता था। यहाँ दादी की छाँह में पापा का कोई आदेश मानना अनिवार्य नहीं था। सुबह-सुबह वह दादी की उंगली से लगी-लगी बाजार चली जाती। दादी उषा की मनपसन्द सब्जियां खरीदतीं और लौटते वक्त उसे कचौरी खिलातीं। गली से जरा दूर पर नाश्ते में तेल की खस्ता कचौ-रियां आलू की रसेदार सब्जी के साथ मिलतीं। दो पैसे की कचौरी का वह अनोखा स्वाद कभी भुलाया नहीं जा सकता। एक और चीज जो वह कभी-कभी लाया करती थी, वह थी

नारियल के चौड़े-चौड़े पतले छल्ले। कई बार सुबह जब घर के लोग यमुना-स्नान के लिए जाते, वह भी साथ जाती और वहां इतने सारे कछुओं को देख चमत्कृत हो जाती।

जगन ने कभी कछुए नहीं देखे थे।

उषा ने बताया विश्राम घाट पर सैकड़ों कछुए चमड़े की शिलाओं की तरह पड़े रहते हैं। उनके पास सिर्फ तीन दिन थे। उषा ने इरादा किया, एक दिन नाव में जी भरकर सैर करेंगे, एक दिन वृन्दावन जाएंगे और एक दिन घर में पापा के साथ बातों में बिताएंगे।

उन लोगों ने घर इत्तला करना जरूरी नहीं समझा था। पत्र डालने का समय नहीं था और तार पाबंदी के मामले में अक्सर धोखा दे देते थे। स्टेशन से तांगा ले वे सीधे डेम्पियर पार्क पहुंच गए।

पापा उस वक्त दफ्तर जाने की तैयारी में थे। वे बड़े जोश से मिले, लेकिन जल्द उनका जोश ठंडा पड़ गया। उषा ने बहुत चाहा जगन को यह फिसलाव पता न चले, लेकिन पापा के दफ्तर जाने की अतिरिक्त व्यस्तता, उनकी आंखों में लिखा वह संक्षिप्त एवं सूक्ष्म एतराज कहीं गहरे तक जगन को जड़ और जटिल बनाने लगा। उनके ऑफिस चले जाने पर उषा ने जगन को सहज करने की लाख कोशिश की, यमुना तक चलने का आग्रह किया, लेकिन जगन पत्रिकाओं के बहाने बाहरी कमरे में जो बैठा तो उठा ही नहीं।

शाम को भी उषा ने पाया पापा और जगन एक-दूसरे को लेकर बेहद टची हो रहे हैं। वे बातें कर रहे थे, लेकिन वार्तालाप नहीं बन पा रहा था। मां की चाय पिलाने की कोशिशें, उषा का जानबूझकर ज्यादा बोलना, कुछ भी जगन का अटपटापन दूर नहीं कर पा रहा था। शादी के बाद पूरा परिवार पहली बार इकट्ठा हुआ था, लेकिन हरेक के मन में दूसरे के प्रति

पुरनी में मानता मान आई। पिछले महीने चिट्ठी आई क बिलकुल ठीक हो गई। हमारे घर की सारी चिन्ताएं चिन्तपुरनी देवी ने मिटाई हैं। बड़ा सहारा है, उस शेरांवाली का।'

जगन और उषा को देवी देवताओं में विश्वास नहीं था सन्देह ही था, लेकिन इस समय वे मां से बहस में नहीं पड़ना चाहते थे। दो-चार दिन तो वे थकान उतारने के बहाने इस बात को टाल सकते थे।

जल्द ही उषा घर की दैनिकता और गली की राजनीति से परिचित हुई। उसने पाया दोनों चीजें एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं।

ये मार्च के आखिरी दिन थे। सुबह-सुबह हलकी ठंड के अहसास से नींद उचटती तो मन होता कम्बल ओढ़कर फिर सो जाएं, लेकिन घर में तब तक सुबह की ध्वनियां भर चुकी होतीं। उषा पाती मां उठ गई हैं, नहा चुकी हैं और सामने वाले बिस्तर पर बैठी पाठ कर रही हैं। वे उससे कुछ न कहतीं, लेकिन संकोच के मारे उषा भी उठ पड़ती, अपना बिस्तर समेटकर।

पंडित से पूछकर मां को एक अच्छा-सा, निर्विघ्न दिन मिल गया। पहली शाम से ही वे आग्रह करने लगीं कि सारा परिवार चिन्तपुरनी चले। पापा स्कूल का बहाना कर सफाई से अलग हो गए। उनकी गतिविधियों का संसार मां से नितान्त भिन्न था। जगन ने साफ कह दिया वह नहीं जाएगा। रह गई सिर्फ उषा।

यह विचित्र स्थिति थी कि दो ऐसे व्यक्ति साथ-साथ इस यात्रा पर रवाना हुए, जो मन.स्थिति और विचारधारा में बिलकुल विपरीत थे। इन विपरीतताओं का पूरक सिर्फ वह स्नेह और लिहाज था, जो स्पष्ट रूप से उनके बीच था।

सवेरे उठकर उषा सिर्फ तैयार भर हो पाई जिस बीच मां

ने रास्ते के लिए भोजन और दो दिन के सामान का भी प्रबन्ध कर लिया।

असली यात्रा होशियारपुर से आरम्भ हुई। होशियारपुर बस स्टैंड पर चिन्तपुरनी जाने वाले भक्त यात्रियों की खासी भीड़ थी। कई प्राइवेट कम्पनियों की तत्पर बस सर्विस थी। दुर्गा ट्रांसपोर्ट सर्विस, जय माता बस सर्विस वगैरह। बस के चलने का क्षण सिंहनाद का क्षण था। सारे यात्री समवेत स्वर में बोले, 'बोल सांचे दरबार दी जय !'

जैसे ही पहाड़ी रास्ता आरम्भ हुआ एक छोटा-सा सिख बच्चा यात्रियों का अगुवा बन गया। उसके सिर पर बालों का नन्हा-सा जूड़ा था, जिसपर उजला रूमाल बंधा हुआ था। उसने शुरू किया।

'सारे ही बोलो'
'जय माता दी।' सबने कहा।
'उच्चे बोलो'
'जय माता दी।'
'प्रेम से बोलो'
'जय माता दी।'
'जोर से बोलो'
'जय माता दी।'
'मैं नईं सुणया'
'जय माता दी।'
'हल्लें नईं सुण्या'
'जय माता दी।'
'ड्राइवर भी बोले'
'जय माता दी।'
'कन्डक्टर भी बोले'
'जय माता दी।'

पुरनी में मानता मान आई। पिछले महीने बिट्टो बाई ब
बिलकुल ठीक हो गई। हमारे घर की सारी चिन्ताएं विन्ध्यवा
देवी ने मिटाई हैं। बड़ा सहारा है, उस शेरोंवाली का।'

जगन और उषा को देवी देवताओं में विश्वास नहीं था
-सन्देह ही था, लेकिन इस समय वे मां से बहस में नहीं पड़
चाहते थे। दो-चार दिन तो वे थकान उतारने के बहाने
बात को टाल सकते थे।

जल्द ही उषा घर की दैनिकता और गली की राजनीति
परिचित हुई। उसने पाया दोनों चीजें एक-दूसरे से जुड़ी हुई
हैं।

ये मार्च के आखिरी दिन थे। सुबह-सुबह हल्की ठंड के
अहसास से नींद उचटती तो मन होता कम्बल ओढ़कर फिर सो
जाएं, लेकिन घर में तब तक सुबह की ध्वनियां भर चुकी होतीं।
उषा पाती मां उठ गई हैं, नहा चुकी हैं और सामने वाले बिस्तर
पर बैठी पाठ कर रही हैं। वे उससे कुछ न कहतीं, लेकिन
संकोच के मारे उषा भी उठ पड़ती, अपना बिस्तर समेटकर।

पंडित से पूछकर मां को एक अच्छा-सा, निर्विघ्न दिन
मिल गया। पहली शाम से ही वे आग्रह करने लगीं कि सारा
परिवार विन्ध्याचल चले। पापा स्कूल का बहाना कर सारे से
अलग हो गए। उनकी गतिविधियों का संसार मां से बिल्कुल
भिन्न था। जगन ने साफ कह दिया वह नहीं जाएगा। रह गई
सिर्फ उषा।

यह विचित्र स्थिति थी कि दो ऐसे व्यक्ति साथ-साथ रह
[illegible] हुए, जो मन स्थिति और विचारधारा में बिल-
कुल विपरीत थे। इन विपरीतताओं का पूरक सिर्फ यह बोध
और [illegible] था जो स्पष्ट था [illegible] उनके बीच था।

उषा सिर्फ तैयार भर हो पाई थी कि बीच में

ने रास्ते के लिए भोजन और दो दिन के सामान का भी प्रबन्ध कर लिया।

असली यात्रा होशियारपुर से आरम्भ हुई। होशियारपुर बस स्टैंड पर चिन्तपुरनी जाने वाले भक्त यात्रियों की खासी भीड़ थी। कई प्राइवेट कम्पनियों की तत्पर बस सर्विस थी। दुर्गा ट्रांसपोर्ट सर्विस, जय माता बस सर्विस वगैरह। बस के चलने का क्षण सिंहनाद का क्षण था। सारे यात्री समवेत स्वर में बोले, 'बोल सांचे दरबार दी जय!'

जैसे ही पहाड़ी रास्ता आरम्भ हुआ एक छोटा-सा सिख बच्चा यात्रियों का अगुवा बन गया। उसके सिर पर बालों का नन्हा-सा जूड़ा था, जिसपर उजला रूमाल बंधा हुआ था। उसने शुरू किया।

'सारे ही बोलो'
'जय माता दी।' सबने कहा।
'उच्चे बोलो'
'जय माता दी।'
'प्रेम से बोलो'
'जय माता दी।'
'ज़ोर से बोलो'
'जय माता दी।'
'मैं नईं सुणया'
'जय माता दी।'
'हल्ले नईं सुण्या'
'जय माता दी।'
'ड्राइवर भी बोले'
'जय माता दी।'
'कन्डक्टर भी बोले'
'जय माता दी।'

'स्याणे बोले'
'जय माता दी।'
'स्याणे बोले।'
'जय माता दी।'
'शेरां वाली'
'जय माता दी।'
'चिन्तपूरणी'
'जय माता दी।'

फिर उस बच्चे ने भजन शुरू कर दिया, 'मेरी मां दे सिर उत्ते लाल चुन्नियां।'

उसके मां-बाप गर्व से बस में सबको देख रहे थे।

जिन रास्तों पर बस जा रही थी, उनपर बढ़िया ब्रेक अथवा भजन के सहारे ही जाया जा सकता था। उषा को बार-बार ड्राइवर के कौशल पर अचम्भा हो रहा था। संकरे रास्तों के एक तरफ शिवालक की ऊंची पहाड़ियां थीं, दूसरी तरफ खड्ड। उषा ने देखा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कुटज सैकड़ों की तादाद में खिला हुआ था। खड्ड की गहराई से लेकर उसकी दीवारों तक चीड़ के हरे, नुकीली पत्तियों से भरे पेड़ खड़े थे। मां सुबह से निरन्न थी, दर्शन करने के बाद ही वे मुंह जुठा करने वाली थीं। कई महिलाएं खिड़की के पास सिर झुकाए उलटी कर रही थीं।

मन्दिर के आंगन में वे बच्चे चीख-पुकार मचाए हुए थे, जिनका मुंडन हो रहा था। दुर्गा के नाम पर नाई, पानी वाला, बाजे वाला, तगड़ी कमाई कर रहे थे।

मां ने दुर्गा से बेटे के लिए काम और उषा के लिए संतान मांगी। उषा ने उनकी बन्द आंखों की तन्मयता देखी और बड़ी ... उन बोलियों के बारे में सोचा जो हमेशा ही उसके

धर्म में पड़ी रहती थीं। उषा ने चाहा बहू की छुट्टी मांगे, लेकिन उसकी समझ में नहीं आया क्या? ईश्वर से उसकी अपेक्षाएं हमेशा सीमित रही थीं। उसे लगता था काम उसे समाज से मांगना है और संतान पति से। चिन्तपूर्णी के प्रति वह नमस्कार के अलावा और क्या कर सकती है!

मन्दिर से निकलते ही दोनों ने खाना खाया, छोले की दाल और रोटी। धर्म-स्थल था, इसलिए प्याज का प्रयोग वर्जित था। छोटे-छोटे स्वच्छ ढाबे थे, जहां घर के लड़के-बच्चे दौड़-दौड़कर काम कर रहे थे। आसपास इतनी ठंडक, इतनी खूबसूरती कि बकरी के दूध की चाय भी स्वादिष्ट लग रही थी। सामने दीवार पर लाल तिकोन बना हुआ था, जिसके नीचे लिखा था, 'बस दो या तीन बच्चे' उषा को हंसी आ गई।

वापसी, वापसी की तरह गर्म, लम्बी और थका देने वाली थी। उषा रास्ते भर बस का पेचदार उतार, मकानों के काले स्लेटी पत्थर से छप्पर और चीड़ के पेड़ देखती आई।

मां के चेहरे से संकल्प का तनाव उतर जाने से ढीलापन आ गया था। वे बहुत ज्यादा थकी लग रही थीं। उषा को महसूस हुआ वे चंडीगढ़ पहुंचकर बीमार हो सकती हैं। जब से उनके दोनों लड़के वयस्क हुए, वे कभी चिन्ता मुक्त नहीं रह सकीं। बड़े के लिए वे इसलिए चिन्तित थीं, क्योंकि वह बहुत दूर, विदेश में था। कभी किसी बच्चे की बीमारी की वहां से खबर आती, वे हफ्तों यहां व्रत-पूजा में लगी रहतीं। इस समय उनकी सारी चेतना जगन के साथ थी। उन्हें पूरा विश्वास था कि सारे देवी-देवता उनकी मदद करेंगे।

एक महीना घर में रहकर उषा और जगन, दोनों का स्वास्थ्य सुधर गया। उषा ने इस बीच बहुत कुछ पढ़ डाला, हिन्दी, अंग्रेजी दोनों, लेकिन जोगेन्दर को उसने अक्सर अखबार पढ़ते ही पाया।

इतने आराम और शान्ति में उषा को एक विचित्र-सी अनुभूति होती। कुछ-कुछ गैर-महफूलियत जैसी। उसे लगता इस सारे आराम में एक तकलीफ भी है। वह है, जगन से खुलकर बात न कर पाने की। दिन का कोई भी हिस्सा ऐसा नहीं था, जब वह जगन के साथ इत्मीनान से बैठ सकती। जब घर के लोग आस-पास न होते, पड़ोसियों के बच्चे धमा-चौकड़ी मचाने लगते। कभी कोई रिश्तेदार आया रहता, तो कभी किसी के घर उषा को मां के साथ जाना पड़ता।

जिन घरों में उषा ले जाई जाती। वे बड़े कायदे के घर होते। बड़े मेजपोश, साफ फर्श और चमकते जूतों वाले। वे स्त्रियां बड़े कायदे की स्त्रियां होतीं, पति को वक्त पर भोजन और सन्तति देने वाली। वे बड़े स्पष्ट रूप से उषा के पेट की तरफ देखतीं और चुप हो जातीं। यह तो उषा हंस कर टाल सकती थी, लेकिन जब मां धीरे से यह कहतीं, 'अभी तो यह पढ़ रही है।' उषा के मन में तीव्र असन्तोष उठता। एक बार एक जगह उसने कह दिया, 'नहीं यह बात नहीं है। अभी तो हमारे प्लान में यह है ही नहीं।' मां ने उसे आलोचनात्मक दृष्टि से देखा और वहां से निकलने पर समझा भी दिया कि बड़ों के सामने ज्यादा बोलना अच्छा नहीं लगता।

मां उषा को समझातीं घर कैसे बनाना चाहिए। कपड़े धोने में साबुन के साथ सोडा भी मिलाना चाहिए। हींग और नींबू का प्रयोग कब और कैसे करना चाहिए और कसैले पड़के न बनें, इसका क्या इलाज है।

ख्यालात के स्तर पर उषा को ये बातें रोचक, नई और कौतूहलमय लगतीं, लेकिन व्यवहार के स्तर पर उसे यकीन था, वह इन्हें लागू नहीं कर पाएगी। ओवरसियर उषा के आस-पास मां की सर्वव्यापी मौजूदगी देखना और बाहर निश्चित भागने के [illegible] फिर निकल जाना, कभी-कभी उसे लगता, आत-

कल उषा का जबरदस्ती एक जड़ संस्करण तैयार किया जा रहा है, लेकिन वह मां से बहस मोल नहीं लेना चाहता था। उसे पता था मां उसे जिद हो जाएं तो कठिनतम बन सकती हैं।

जगन के पापा ने एक बार दबी जुबान से कहा कि साल भर यहीं रहकर वे दोनों बी० टी० कर डालें। वे किसी भी स्कूल में उन्हें नियुक्त करवा देंगे। हरियाणा में ट्रेण्ड स्कूल टीचर का प्रारम्भिक वेतन चार सौ पचास था। उषा ने उनके सामने गरदन हिलाई, लेकिन जोगेन्दर जड़ खड़ा रहा। उसे बी० टी० से सख्त चिढ़ थी। न जाने कब उसके मन में यह बात पैठ गई थी कि लड़की वही बी० टी० करती है, जो विधवा हो और लड़का वह जो जनाना।

लेकिन इसका अहसास जगन को भी था कि यह कोई स्थायी व्यवस्था नहीं है। आखिर कितने दिन वह यों बैठा बन कर रह सकता है। यूनिवर्सिटी के चक्कर लगाना अब उसने बन्द कर दिया था। घर की निगाहों से बचने के लिए वह अपने दोस्त त्यागी के प्रेस में जाकर बैठ जाता, जहां एक १२×१५ की ट्रेडिल सारा दिन खटर-खटर चलती रहती। दो कम्पोजीटर गुरमुखी के पेचीदा दिखने वाले अक्षर जोड़कर प्रूफ उठाते और त्यागी बैठा प्रूफ देखा करता। त्यागी उसके साथ बी० ए० तक पढ़ा था। उसके बाद एम० ए० करने और बेकार रहने की बजाय उसने यह सैकण्ड हैण्ड ट्रेडिल लगा ली थी।

यह उन्हीं दिनों की बात थी 'हिन्दुस्तान' में जगन को एक विज्ञापन नजर आया, 'इलाहाबाद में चालू हालत में प्रेस बिकाऊ है। सम्पर्क करें श्री ज० न० मिश्र, कोल्हन टोला।' जगन ने बड़े जोश में उषा को विज्ञापन दिखाया। उषा सहम गई, 'पैसे कहां है। एक मीटर कपड़ा खरीदने तक की तो औकात नहीं, प्रेस कहां से खरीदेंगे और फिर जिस चीज के बारे

इतने आराम और शान्ति में उषा को एक विचित्र-सी अनुभूति होती। कुछ-कुछ गैर-महूलियत जैसी। उसे लगता इस सारे आराम में एक तकलीफ भी है। वह है, जगन से खुल बात न कर पाने की। दिन का कोई भी हिस्सा ऐसा नहीं जब वह जगन के साथ इतमीनान से बैठ सकती। जब घर लोग आस-पास न होते, पड़ोसियों के बच्चे धमा-चौकड़ी मच लगते। कभी कोई रिश्तेदार आया रहता, तो कभी किसी घर उषा को मां के साथ जाना पड़ता।

जिन घरों में उषा ले जाई जाती। वे बड़े कायदे के घ होते। कढ़े मेजपोश, साफ फर्श और चमकते जूतों वाले। स्त्रियां बड़े कायदे की स्त्रियां होतीं, पति को वक्त पर भोजन और सन्तति देने वाली। वे बड़े स्पष्ट रूप से उषा के पेट की तरफ देखतीं और चुप हो जातीं। यह तो उषा हंस कर टाल सकती थी, लेकिन जब मां धीरे से यह कहतीं, 'अभी तो यह पढ़ रही है।' उषा के मन में तीखा असन्तोष उठता। एक बार एक जगह उसने कह दिया, 'नहीं यह बात नहीं है। अभी तो हमारे प्लान में यह है ही नहीं।' मां ने उसे आलोचनात्मक दृष्टि से देखा और वहां से निकलने पर समझा भी दिया कि बड़ों के सामने ज्यादा बोलना अच्छा नहीं लगता।

मां उषा को समझातीं घर कैसे बनाना चाहिए। कपड़े धोने में साबुन के साथ सोडा भी मिलाना चाहिए। हींग और नीबू का प्रयोग कब और कैसे करना चाहिए और करेले कड़वे न बनें, इसका क्या इलाज है।

व्याख्यान के स्तर पर उषा को ये बातें रोचक, नई और कौतुकमय लगतीं, लेकिन व्यवहार के स्तर पर उसे यकीन था, वह इन्हें लागू नहीं कर पाएगी। जोगेन्दर उषा के आस-पास मां की सर्वव्यापी मौजूदगी देखता और बाहर निष्क्रिय भटकने के लिए एक बार फिर निकल जाता, कभी-कभी उसे लगता, आज-

कल उषा का जबरदस्ती एक जड़ संस्करण तैयार किया जा रहा है, लेकिन वह मां से बहस मोल नहीं लेना चाहता था। उसे पता था मां उसे जिद हो जाएं तो कठिनतम बन सकती हैं।

जगन के पापा ने एक बार दबी जुबान से कहा कि साल भर यहीं रहकर वे दोनों बी० टी० कर डालें। वे किसी भी स्कूल में उन्हें नियुक्त करवा देंगे। हरियाणा में ट्रेण्ड स्कूल टीचर का प्रारम्भिक वेतन चार सौ पचास था। उषा ने उनके सामने गरदन हिलाई, लेकिन जोगेन्दर जड़ खड़ा रहा। उसे बी० टी० से सख्त चिढ़ थी। न जाने कब उसके मन में यह बात पैठ गई थी कि लड़की वही बी० टी० करती है, जो विधवा हो और लड़का वह जो जनाना।

लेकिन इसका अहसास जगन को भी था कि यह कोई स्थायी व्यवस्था नहीं है। आखिर कितने दिन वह यों बैठा बन-कर रह सकता है। यूनिवर्सिटी के चक्कर लगाना अब उसने बन्द कर दिया था। घर की निगाहों से बचने के लिए वह अपने दोस्त त्यागी के प्रेस में जाकर बैठ जाता, जहां एक १२ × १५ की ट्रेडिल सारा दिन खटर-खटर चलती रहती। दो कम्पो-जीटर गुरुमुखी के पेचीदा दिखने वाले अक्षर जोड़कर प्रूफ उठाते और त्यागी बैठा प्रूफ देखा करता। त्यागी उसके साथ बी० ए० तक पढ़ा था। उसके बाद एम० ए० करने और बेकार रहने की बजाय उसने यह सैकन्ड हैन्ड ट्रेडिल लगा ली थी।

यह उन्हीं दिनों की बात थी 'हिन्दुस्तान' में जगन को एक विज्ञापन नजर आया, 'इलाहाबाद में चालू हालत में प्रेस बिकाऊ है। सम्पर्क करें श्री ज० न० मिश्र, कोल्हन टोला।' जगन ने बड़े जोश में उषा को विज्ञापन दिखाया। उषा सहम गई, 'पैसे कहां है। एक मीटर कपड़ा खरीदने तक की तो औकात नहीं, प्रेस कहां से खरीदोगे और फिर जिस चीज के बारे

में कुछ पता नहीं…।'

'जाकर देखने में भी कोई बुराई नहीं।' जगत ने कहा।

जगत ने माँ से किसी तरह भी हामी ले ली।

चार ही दिनों में इलाहाबाद जोगिन्दर को अच्छी तरह समझ आ गया। छोटा-सा शहर था। जिले का सबसे बड़ा व्यापार केन्द्र। लेखकों, प्रकाशकों, मुद्रकों से भरा यह शहर पंजाब के किसी भी शहर से नितान्त अलग और अजीब था। स्टेशन पर व्हीलर के बुक-स्टाल के अलावा और कुछ भी परिचित नहीं लगा। एक फेरीवाला अमरूद लिए खड़ा था। उसके पास ही पीकदान बना था, जिसके बाहर ज्यादा और अन्दर कम पीक थी। स्टेशन से कोल्हुन टोले का रास्ता बदरंग था। धूप की तेजी में अधिकांश छोटी-छोटी सड़क छाप दुकानें ढकी पड़ी थीं। एक ओर छोटी सी इमारत पर लिखा था 'सरकारी दांत का अस्पताल।' हिन्दी का आश्चर्यजनक गलत प्रयोग! सड़क खत्म होने पर रिक्शा एक सकरी-सी गली में घुस गया। यहां माहौल कुछ अलग था। एक तरफ अंडे बिक रहे थे, रंगरेजों की दुकानें साथ-साथ थीं, कुछ घरों के आगे बकरियां मैं-मैं कर रही थीं, लकड़ी की टाल थी और डॉक्टर रहीम जैदी का दवाखाना। इससे जरा आगे बढ़े थे, जर्जर से फाटक पर लिखा था 'विश्वभारती प्रेस'।

एक दो लोग पहले से ही वयोवृद्ध मिश्राजी के पास बैठे हुए थे। इशारे पर जोगिन्दर पास की कुर्सी पर बैठ गया और उनकी बातें न सुनने का असफल प्रयत्न करता रहा। आए हुए एक सज्जन ने कहा, 'अट्ठाईस पौंड का कागज तो स्टॉक में नहीं है मिश्रा जी? छत्तीस का है, भिजवा दूं। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ेगा। शहर के सारे प्रकाशक यही लगा रहे हैं।'

'आप यहां से उठ जाइए, फौरन खड़े जाइए।' मिश्राजी ने भड़क कर उनको दरवाजा दिखा दिया।

दूसरा अभी खड़ा ही था। उसने उनके हाथ में एक बिल दिया। मिश्राजी ने बड़े ध्यान से बिल देखा, फिर मेज की निचली ड्राअर से एक छोटी कापी निकाल कर कुछ मिलान किया और बोले, 'इसमें छत्तीस पैसे ज्यादा लगे हैं।'

उस आदमी ने बिल एक बार फिर जांचा, 'जी नहीं, दो दिन 'भारत' अखबार छपा नहीं था। उसकी जगह हमने देशदूत डाला था। उसी के छत्तीस पैसे हैं।'

'किसने कहा था आपसे देशदूत डालने के लिए ? आप मुझ से पूछने आए थे ?'

'सभी ग्राहकों के यहां हम ऐसा करते हैं।'

'आप सबको मूर्ख बना सकते हैं, मुझे नहीं। जब मैंने देश-दूत मांगा नहीं, तो उसके पैसे मैं कैसे दे सकता हूं।'

कुछ देर वह आदमी फंसा हुआ-सा खड़ा रहा, फिर बिना हुज्जत किए छत्तीस पैसे कम लेकर चला गया।

अब मिश्राजी ने उसकी ओर देखा, 'क्या काम है आप को ?'

'मैंने अखबार में आपका इश्तेहार देखा था, उसी सिलसिले में…'

'जरा रुक जाइए। सबसे पहले यह पढ़कर सुनाइए।'

उन्होंने 'भारतीय संस्कृति की रूपरेखा' पुस्तक खोलकर उसके आगे रखी।

जोगेन्दर को हिन्दी पढ़ने का अच्छा अभ्यास था। उसका उच्चारण भी बुरा नहीं था। दो ही वाक्य वह पढ़ पाया था कि मिश्राजी ने कहा, 'ठीक है, किताब रख दीजिए। बात यह है, मैं किसी निरक्षर भट्टाचार्य के हाथ प्रेस नहीं बेचना चाहता। अंग्रेजी आपको आती ही होगी, उससे मुझे कोई मतलब नहीं है।'

होता क्या है, जिसे हिन्दी नहीं आती वह हिन्दी की किताबें छापता है और अर्थ का अनर्थ कर देता है। अब कुछ बातें आप साफ-साफ सुन लीजिए। यह प्रेस मैं ऐसे नहीं बेच रहा हूं, जैसे होरी ने अपनी गाय बेची थी। मेरा अपना काम है। मेरी सब पुस्तकें प्रेस बिकने के बाद भी यहीं छपेंगी, जो बाजार रेट है, वही मैं दूगा। ज्यादा काम नहीं। पर मेरा काम पहले, दूसरों का बाद में। अगर मेरी किताबें छपने में गड़बड़ी हुई, मैं अपना प्रेस वापिस ले लूंगा।'

साहनी एकाग्र हो सुनता रहा। उसे लगा यह सब तो ठीक है, लेकिन पैसा कहां से आएगा? यहां मशीन भी है, काम भी, पर···वह बहुत निराश हो आया।

मिश्रा जी उसे अन्दर ले गए, 'यह सीलिन्डर मैंने यू० के० से मंगवाई थी, सन् सैंतालीस में। यह ट्रेडिल है, इन पर मैं सिर्फ रंगीन काम करता हूं। दो हजार किलो टाइप है, तीन दर्जन केस है। मैंने सब सामान की सूची बनाई हुई है, दिखाऊंगा।' वे फिर ऑफिस की ओर मुड़े।

साहनी को बड़ा संकोच हो आया। अभी थोड़ी देर पहले का उनका क्रोध याद आया। हिम्मत करके वह बोला, "दर-असल बात यह है, मेरे पास···मेरे पास पैसों की व्यवस्था नहीं है।'

मिश्रा जी ने गहरी झुंझलाहट से उसकी ओर देखा, 'तो फिर मेरा वक्त और दिमाग क्यों खराब कर रहे हैं। जाइए, जब इन्तजाम हो जाए तब बात कीजिएगा।' उन्होंने उसकी ओर से ध्यान बिलकुल हटा लिया।

साहनी पस्त तबीयत उठा और पैदल गली के आखिरी सिरे तक चला गया, जहां अपेक्षाकृत खुली सड़क थी। पहले तो उसका मन हुआ वह अभी स्टेशन चला जाए और अगली गाड़ी से चंडीगढ़ के लिए रवाना हो जाए, पर फिर वहां जाकर वह

क्या करेगा ? इसी सवाल को जहन में ले वह चौक के आसपास भटकता रहा। वहीं मानसरोवर होटल का बोर्ड पढ़ उसने उसमें एक कमरा किराए पर ले लिया। वह सोचना चाहता था और सोना भी। होटल अद्भुत रूप से सस्ता था, दो रुपये में कमरा, सवा रुपये में खाना। सोच-विचार के दौरान ही उसे यह बात महसूस हुई कि मिश्रा जी अपना प्रेस बेचना उतना नहीं चाहते, जितना संभालना-समेटना। उन्हें देखकर उसे लगा अगर वे नौकरी में होते, तो वर्षों पहले रिटायर हो चुके होते। उन्हें कन्विन्स किया जा सकता है, उसे लगा।

इस बार जब वह प्रेस पहुंचा मिश्रा जी उठने की तैयारी में थे। बोले, "इस वक्त सात बजने वाले हैं। कोई बात नहीं हो सकती। आपको जो कुछ कहना हो कल दस बजे आकर कहिए।"

साहनी ने सहमति जाहिर कर दरवाजे बन्द करने में उनका हाथ बटाया। उसने पाया अन्दर बहुत-सी कोठरियां थीं। किसी में कागजों का अम्बार, किसी में प्रूफ मशीन, किसी में कटिंग मशीन और किसी में सिर्फ रद्दी पड़ी थी।

मिश्राजी बाहर के दरवाजे पर तीन ताले लगाते हुए बोले, "देखिए, आप घंटाघर तक मेरे साथ पैदल चलकर बात कर सकते हैं। वहां से मैं रिक्शा लेकर चला जाता हूं।"

रास्ता संक्षिप्त था, पर भीड़ भरा।

साहनी ने बड़े नियोजित ढंग से अपनी बात उनके सामने रखी, "प्रेस आपका है, आपका रहेगा। मुझे सिर्फ आपके मार्ग-निर्देशन में काम करने दें। जो आपकी समझ आए, वेतन दे दें।"

"पर आए तो आप प्रेस खरीदने थे। नौकरी करने नहीं," मिश्रा जी बोले।

"जी हां, पर मैं पैसे का कोई प्रबन्ध नहीं कर सकता, इस लिए इसका कोई विकल्प नहीं हो सकता।"

था, लेकिन उसे यह प्रस्ताव नवजीवन की तरह लगा था।

मिश्राजी ने कहा, 'तुम अभी वापस नहीं जा सकते। हफ्ता दस दिन यहां रहकर प्रेस का काम वगैरह समझो, फिर रुपये पैसे का इन्तज़ाम करना।'

जोगेन्दर ने इस बीच घर पत्र लिख दिया था कि काम शुरू करने के लिए उसे सिर्फ पांच हजार की जरूरत है। उसे नहीं पता था, उसके पिता यह पांच हजार कहां से लाएंगे। उसे सिर्फ इतनी खबर थी कि एक ज़माने में जो समूचा कहलवल गांव उसके बाबा का था अब बिकते-बिकते और टूटते-टूटते चार आना भर उनके कब्ज़े में रह गया है, जिसमें उसके सात चाचाओं का दखल है।

जगन दस दिन इलाहाबाद रहा। ये दसों दिन उसके प्रशिक्षण के दिन थे।

रोज़ प्रेस में उसे बुलाने बाद मिश्राजी उसे दिन भर का शेड्यूल समझाते और फिर किसी-न-किसी मिशन पर रवाना कर देते।

ऐसे ही एक दिन उन्होंने कहा, 'ऐसा करो, आज तुम विशाल कौशल प्रेस चले जाओ।'

'वहां क्या करना होगा?' जगन ने पूछा।

'कुछ नहीं, तुम सिर्फ बैठे रहना। मलिक साहब से कहता मैंने भेजा है।'

जगन ढूंढता-ढांढता विशाल कौशल प्रेस पहुंचा। एक बड़े ट्रस्ट द्वारा संचालित यह प्रेस कुछ विभागीय परीक्षाओं की पुस्तकें छापता था।

अन्दर कागज़ों के अम्बार के बीच पड़ी मेज पर एक चौंसठ साल आदमी बनियान और तहमद में पैर फैलाए बैठा था। उसके लम्बे घुंघराले बाल, गठा हुआ सीना, कन्धों के फैलाव में एक ऐसी विशिष्टता थी, जो सहज ही उस अधेड़ अवस्था में उसे

नौजवान का मुआयना दे रही थी। उनकी उम्र का सह अंदाज लगा लेना मुश्किल था। उन्होंने पास खड़े एक कम्पोजीटर को हांक लगाई, 'ऐ, मुन्नी दे! जरा ठिन्डी लाइयो।'

वह उनसे दस का नोट लेकर बाहर दौड़ा।

जोगेन्दर की ओर देखकर वे बोले, 'क्या तकलीफ आपको?'

जोगेन्दर ने जल्दी से मिश्रा जी के बारे में बताया और बैठ गया।

मलिक साहब उसके प्रति नर्म हो आए, फिर उसे खालिस पंजाबी लहजे में समझाने लगे, 'मेरी मान, वापस चला जा अम्बाले स्टेशन पर छोले-कुलचे की रेढ़ी लगा ले। चंडीगढ़ में सकूटर चला ले। जां टांडे में टीचर बन जा। ऐ बड़ा कुत्ता धंधा है। इस शहर में पांच सौ प्रेस हैं। हजार से ऊपर प्रकाशक। सब-के-सब चोट्टे। काम की तुझे कमी नहीं रहेगी। चौबीस की जगह छब्बीस घंटे भी चलाएगा, तो किताबें खत्म नहीं होंगी। लोग देखेंगे बाहर से आकर नौजवान आदमी ने प्रेस चलाया है, खूब काम देंगे। तेरे प्रेस में कागज डलवा देंगे, ब्लाक देंगे, दो-चार सौ अडवांस भी दे देंगे, लेकिन इसके बाद तू उनके घर के चक्कर लगाएगा, ये तेरे प्रेस पच्चीस बरस तो आने से रहे।'

जगन ने मन में सोचा यह काम की डिलिवरी तब देगा जब पेमेंट हो जाए।

मलिक साहब शायद उसका तर्क जान गए, बोले, 'हां 'मिश्रा जी की बात जाने दे। उनका तो तू किसी महीने पच्चीस हजार का काम करेगा तो पच्चीस हजार पूरे तुझे थमाकर ही फर्मे उठवाएंगे। मैं उनकी बात नहीं कर रहा हूं। चोट्टों की बात कर रहा हूं, जो आज प्रकाशक बन गए, कल चीनी का ब्लैक करने लगे, अगले रोज ताला डाल कालपी चले गए।

'मिश्रा जी को मैं सब से जानता हूं, जब वे पटियाले में थे। तब उन्हें आजादी की, खादी की, कोई लगन नहीं लगी थी। हम एक-एक मुर्ग खरीद लेते, उन्हें लड़ाते, फिर फाड़कर वहीं ठंडा कर देते। शाम की जोरदार दावत रहती। गांधी बाबा ने इस आदमी का सारा नमक खतम कर दिया।'

'ओय मुंडया! घर से चा ला जल्दी।' उन्होंने हांक लगाई और अमूल स्प्रे का डब्बा खोल पिन्नियां खाने लगे।

तभी एक आदमी बड़ा-सा कागज और प्रूफ लेकर आया, "यह है मशीन प्रूफ। इसे यूं फोल्ड करते हैं। इम्पोज जरूर मिलाना चाहिए।'

यह सब जगन मिश्रा जी से सीख चुका था।

कुछ-कुछ इसी किस्म का माहौल साहनी त्यागी के प्रेस में देख चुका था, लेकिन वहां जब मशीन चलती थी, तो खटर-खटर की आवाज आया करती। यहां जब मशीनें चल रही थीं, साहनी को लगा कमरा ही घरर-घरर चला जा रहा है।

बहुत बड़ी अलमूनियम की केतली में चाय आ गई थी। मलिक साहब ने चाय के दो ग्लास भरकर मेज पर रख लिए।

जगन का मन मिश्रा जी से अधिक मलिक साहब के पास लगता था। अद्भुत व्यक्तित्व सम्पन्न मलिक साहब जब खुश होते तो बादशाह की तरह और नाराज होते तो लठैत की तरह, लेकिन जिससे खफा होते, अगर वह शर्मिन्दा हो गलती कुबूल कर लेता, तो उनका गुस्सा उसी वक्त उतर जाता। जिद और बदतमीजी, दो चीजों की बर्दाश्त उनमें बिलकुल नहीं थी। अगर उनके सफेद घुंघराले बालों पर नजर न जाती, तो उनका डील-डौल देखकर यही लगता था, जैसे उम्र को उन्होंने धक्के मार-कर बाहर निकाल दिया है। सब से विचित्र और सुखद बात तो यह थी कि उनकी पत्नी ठीक उनके विपरीत और इसीलिए

अनुरूप थीं। वे शहर के उन गिने-चुने दम्पतियों में थे, जहां बीवी जनाना और शौहर मर्दाना लगते थे। अन्यथा गगन ने देखा था, निबिसलाइज में पपीते के आकार में फैली थौल्यमय स्त्रियां अपने छोटे भाई जैसे दिखने वाले स्त्रैण पतियों के साथ चहल-कदमी के लिए आया करतीं।

एक दिन मलिक साहब उसे अपने घर ले गए थे और गगन ने थोड़ी ही देर में देखा कि जीने के मुहावरे में पग-पग पर भिन्नता लाना जैसे उनका स्वभाव था। घर की शक्ल में घरेलूपन कतई नहीं था। बड़े कमरे के बीचोबीच चारपाई थी। उसके सिरहाने बहुत से बंधे पान, सिगरेट माचिस और अखबार रखे थे। तकिये के नीचे रुपये और रेजगारी थी, जो नौकर अपने आप निकाल, खर्च कर रहा था। पत्नी चिकन-दो-प्याजा बना रही थीं। कमरा देसी घी में भुनते गोश्त की महक से भर गया था। खिड़की में कूलर फिटेड था, जो बारहों महीने चलाया जाता था। चारपाई के पास हुक्का था, जो सिगरेट का पूरक नहीं था। परम्परा यह थी कि उनके यहां आने वाला बैठने के लिए कुर्सी वगैरह की अपेक्षा नहीं रखता था। जहां जिसे जगह मिलती बैठ जाता। खूंटी पर वह मशहूर अचकन लटकी थी, जिसके बारे में शहर का खयाल था कि वे उसमें अरब के अमीर लगते हैं।

जिन्दगी ने कई बार उनकी कद्र की और कई बार नाकद्री। जहां वे देखते आंख का लिहाज खतरे के निशान पर है, वहीं वे पहन अपनी अचकन, खिसक जाते। उन्हें रोकना तब असम्भव होता।

विशाल कौशल प्रेस में जब वे आए, प्रेस बेहिसाब घाटे में चल रहा था। हर महीने कभी काम करने वालों का वेतन बकाया रह जाता, तो कभी बाजार का उधार। प्रेस के मालिकान एक दैनिक अखबार भी निकालते थे, जो इधर दो वर्षों से

समय पर छपता नहीं था। बाजार में बिकने के लिए वह दिन के ग्यारह-ग्यारह बजे तक हासिल हो पाता। ट्रस्ट उन दिनों प्रेस उठा देने की ही सोच रहा था, जब मलिक साहब एक विशाल भंगिमा से इसमें दाखिल हुए। उनका तेवर देख किसी की हिम्मत ही न हुई कि उनसे वेतन वगैरह जैसी बातें शुरू करने का हौसला भी करे।

एक दिन नरेश बाबू ने बड़े डरते-डरते कहा, 'मलिक साहब ! प्रेस इस वक्त कुछ भी देने की हैसियत में नहीं है।'

'न सही, यह ससुरा दैनिक समाचार महीना-भर वक्त पर निकले तो सही, तब बात करेंगे।' मलिक साहब बोले।

ट्रस्टीज यह सोचकर चुप हो गए कि चार दिन में दुखी आकर मलिक साहब खुद छोड़ जाएंगे। दैनिक समाचार के संवाददाता एक-से-एक सुस्त प्राणी थे। बोर्ड ऑफ ट्रस्टीज में से ही एक आदमी अब तक इसका सम्पादक था, लेकिन वह अनियमित रूप से आता।

मलिक साहब चुनौती की तरह प्रेस में प्रविष्ट कर गए और एक-एक को झंझोड़ दिया। प्रेस का काम और उसकी जानकारी शायद उन्होंने घुट्टी में पी हुई थी। मशीन चलाने से लेकर प्रूफ पढ़ने, कम्पोजिंग करने तक उन्हें सब मालूम था। पहले ही दिन रात को वाली में वे सिलिन्डर मशीन की बगल में चारपाई डालकर लेट गए। मशीन मैन सत्यवान से बोले, 'सुन बे भुतनी दे ! मैं यहां सोया हूं, अखबार छपना है। जो जरा भी मशीन रुकी, तो तभी उठकर तबीयत साफ कर दूंगा।'

फिर मशीन की घरर-घरर के बीच वे खर्राटे लेने लगे। उस रात बचई और सत्यवान ने जी-जान से छपाई करने की कोशिश की लेकिन बरसों की आदत थी, दो बजे मशीन बन्द कर सो जाने की। बड़ा संघर्ष कर तीन बजे तक जागे, फिर मशीन बन्द कर वहीं लुढ़क गए।

समय पर छपता नहीं था। बाजार में बिकने के लिए वह दिन के ग्यारह-ग्यारह बजे तक हासिल हो पाता। ट्रस्ट उन दिनों प्रेस उठा देने की ही सोच रहा था, जब मलिक साहब एक विशाल भंगिमा से इसमें दाखिल हुए। उनका तेवर देख किसी की हिम्मत ही न हुई कि उनसे वेतन वगैरह जैसी बातें शुरू करने का हौसला भी करे।

एक दिन नरेश बाबू ने बड़े डरते-डरते कहा, 'मलिक साहब! प्रेस इस वक्त कुछ भी देने की हैसियत में नहीं है।'

'न सही, यह ससुरा दैनिक समाचार महीना-भर वक्त पर निकले तो सही, तब बात करेंगे।' मलिक साहब बोले।

ट्रस्टीज यह सोचकर चुप हो गए कि चार दिन में दुखी आकर मलिक साहब खुद छोड़ जाएंगे। दैनिक समाचार के संवाददाता एक-से-एक सुस्त प्राणी थे। बोर्ड ऑफ ट्रस्टीज में से ही एक आदमी अब तक इसका सम्पादक था, लेकिन वह अनियमित रूप से आता।

मलिक साहब चुनौती की तरह प्रेस में प्रविष्ट कर गए और एक-एक को झंझोड़ दिया। प्रेस का काम और उसकी जानकारी शायद उन्होंने घुट्टी में पी हुई थी। मशीन चलाने से लेकर प्रूफ पढ़ने, कम्पोजिंग करने तक उन्हें सब मालूम था। पहले ही दिन रात की पाली में वे सिलिण्डर मशीन की बगल में चारपाई डालकर लेट गए। मशीन मैन सत्यवान से बोले, 'सुन बे भुतनी के! मैं यहां सोया हूं, अखबार छपता है। जो जरा भी मशीन रुकी, तो तभी उठकर तबीयत साफ कर दूंगा।'

फिर मशीन की घरर-घरर के बीच वे खर्राटे लेने लगे। उस रात बचई और सत्यवान ने जी-जान से छपाई करने की कोशिश की लेकिन वर्षों की आदत थी, दो बजे मशीन बन्द कर सो जाने की। बड़ा संघर्ष कर तीन बजे तक जागे, फिर मशीन बन्द कर वहीं लुढ़क गए।

मनिक साहब जिन्न की तरह तुरत उठे। कान पकड़कर दोनों को खड़ा किया। एक-एक सिगरेट देकर बोले, 'खबरदार हरामजादो ! कल ही भगा दूंगा।'

'दैनिक समाचार' अब न सिर्फ समय पर निकलता था, वरन् स्थानीय अंग्रेजी अखबारों से सरकुलेशन में टक्कर भी ले रहा था। अखबार को अब भारी संख्या में विज्ञापन हासिल होने लगे। इसी दैनिक से ट्रस्ट ने सभी का लदा कर्ज उतार फेंका।

मनिक साहब जहां काम करते, वहां से दो अपेक्षाएं रखते, सम्मान और साधन। इन दोनों के लिए मिन्नत-भिक्षा करना उनका स्वभाव नहीं था। सिर्फ एक बार अपनी मांग सामने रखते, फिर सब पहचान के भीतर या बाहर आ जाते। उनकी ये सब शिक्तें जोगेन्दर को खींचती थीं।

जब जगन चंडीगढ़ पहुंचा, तो उसे पता चला पापा ने अपने हिस्से की पुश्तैनी जमीन सरेन्डर कर आठ हजार रुपया हासिल किया है। जमीन पर से उनका हक हटा देख जगन को अच्छा नहीं लगा। प्राइवेट स्कूलों की गैरमुस्तकिल नौकरियों में मात्र यही ठौर पेंशन की तरह आश्वस्त करता था, लेकिन जगन के लिए यह भावुक होने का वक्त नहीं था। पापा के आगे बुढ़ापे का अंधेरा था, तो उसके आगे युवावस्था का।

तीन

बैंक ड्राफ्ट और जया को ले जब वह इलाहाबाद आया शिवाजी उनके ठहरने की व्यवस्था प्रेस के ही ऊपरी हिस्से में कर चुके थे।

ऊपरी हिस्सा मकान से ज्यादा गोदाम था। आगे पीछे कहीं खिड़की नहीं थी, दो दरवाजे थे। एक बावर्ची... गुसलखाने थे। गुसलखाने के साथ पाखाना

भी शामिल था, इसलिए वह दरवाजा बन्द रखना ही बेहतर था। बालकनी का दरवाजा इतना संकरा और ठिगना था कि जगन उसमें से दोहरा होकर निकल सकता था।

मकान देखकर उषा ने कहा, 'कैसा घर है ! कोई भी चीज स्टैंडर्ड साइज की नहीं।'

गुसलखाने वाले हिस्से में नल, नदारद था और पाखाने वाले हिस्से में फ्लश। बालकनी से होते हुए आंगन पार एक बड़ा-सा कमरा था, जिसमें एक तरफ दो पक्की अंगीठियां बनी थीं। यह रसोई घर था। नल आंगन में लगा था और अलमारी बरामदे में।

जगन ने कहा, 'तुम्हें तो हर चीज पर एगमार्क देखने की आदत पड़ गई है।'

बाजार बहुत पास था। दो आदमियों का घर जमाना मुश्किल नहीं पड़ा, फिर घर से ज्यादा वे प्रेस की व्यवस्था करने को उतावले थे।

मिश्राजी ने बताया ये महीने प्रेस के लिए कम काम के होते हैं। 'वर्कर्ज' पांच बजे चले जाते। मशीन बन्द होने पर मकान सांय-सांय कर उठता। आंगन में पड़ोस का झुका नीम टप-टप निबोलियां गिराता और सीढ़ियों में बसे उनके सबसे पुराने बाशिंदे चमगादड़, बिजली जलाने पर टिटियाने लगते। अंधेरा होते ही मुहर्रम का जुलूस सामूहिक उदासी में बड़े दर्द भरे मर्सिये गाता गली से गुजरता।

उषा खिड़की से जुलूस देखती और आतंक से कांप उठती। मर्सिये के बाद मातम—एक सामूहिक हाहाकार। उषा को लगता, अभी वह छोटा लड़का बेहोश होकर गिर पड़ेगा, जो ऐसी बेरहमी से अपने को पीट रहा था। किसी दिन जुलूस छोटी-छोटी छुरियों से मातम करता, तो किसी दिन लोहे की जंजीरों से। शुरू में उषा और जगन इतने परेशान हो जाते कि

उनसे छीना न जाता। कभी-कभी वे घूमने निकल
लेकिन वार्ताओं में गली में अगर जुलूस फँसा होता, तो
उन्हें नुक्कड़ पर खड़े रहना पड़ता।

तभी उन्होंने प्रेस में अतिरिक्त काम करना शुरू किया
उसने पहले लेटर पैड उन्होंने रात में ट्रेडिल चलाकर खुद छ
उसकी डिजाइनिंग बाहर से कराना उनके वश में नहीं था,
लिए उन्होंने खुद तरह-तरह के ले-आउट सोचे थे। पुर
चिट्ठियों से निकाल लेटर-हेड के नमूने देखे और अन्त में वि
उषा के अंगूठे का निशान ही डिजाइन के तौर पर चुना। ट्रे
का १० × १५ का फर्मा कसना, चढ़ाना, रेडी करना, दोन
दोनों ने सीख लिया। छोटे-मोटे काम तो वे रात में बतौर हॉ
खत्म कर देते। कई बार उषा को ऊपर जाकर खाना बनाने
अवकाश न मिलता, वे लोकनाथ में जाकर खा आते।

जगन ने बाहरी प्रकाशकों का काम भी लेना शुरू क
दिया। शहर प्रकाशकों से पटा पड़ा था। प्रकाशकों को लेख
होने का दंभ था, तो लेखकों को प्रकाशक होने का। ऐसे क
लेखक-प्रकाशकों से जगन का साबका पड़ा। कुछ लेखक-प्रकाश
नये मुद्रकों से ही काम कराने की स्थिति में आ चुके थे।

वरिष्ठ लेखकों का यहाँ तीर्थस्थानीय महत्त्व था। वे सभी
साहित्यकार साहित्य के संघर्ष-क्षेत्र से निकल पाठ्य-पुस्तकों के
गढ़ में पहुँचा दिए गए थे, लेकिन वे प्रसन्न नहीं थे। प्रसन्न वे
भी नहीं थे। साहित्य एक ऐसा क्षेत्र था, जहाँ चातक अभी
अपनी स्वाति-बूँद पहचान नहीं पाया था। जिसके पास सम्मान
था वह धन चाहता था, जिसके पास धन था वह सम्मान चाहता
था।

सुहागिन-सा देश को सात-दर-सात
। इस एक अकेले शहर ने देश के लिए

अब तक तीन प्रधानमंत्री, ग्यारह कुलपति, पांच सुकवि और सम्पादक पैदा किए थे। यह शहर की नियति थी कि कोई प्रतिभा यहां ज्यादा समय टिककर नहीं बैठती। वह स्वर्णाभूषण की तरह रातों-रात चोरी हो जाती। शहर अपना महत्व पहचानता था। तभी तो ये खास-उल-खास लोग अगर कभी नोस्टालजिया के शिकार हो इसकी गोद में आना चाहते, शहर अभिमानी मां-सा उन्हें वापस धकेल देता। यहीं पत्रकारिता के क्षेत्र में सम्पादक-शिरमौर के तीन तेरह किए जा सकते थे। ये सब चिढ़े बालकों की भांति वापस अपने सुरक्षा-गृह से जवाबी हमला करते, लेकिन उन हमलों में वह दम न होता, जो इस शहर को हिला सकता।

शहर अजीब मिट्टी का बना था।

दूसरों की प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि और लोकप्रियता से यह कतई प्रभावित न होता, बल्कि उनसे चिढ़ जाता। उनकी खुशामद करने की बजाए उन्हें सींग मारता। इसी चिढ़ का नतीजा था कि एक बड़ी पत्रिका 'पृथ्वी' के सम्पादक के बारे में शहर से निकलने वाली लघु पत्रिकाओं के अधिकांश सम्पादकों का ख्याल था कि ये विक्षिप्त होते जा रहे हैं। यहां से जाकर अगर कोई सफल होता, तो शहर सोचता उस आदमी का पतन शुरू हो गया है। ऐसे आदमियों के विध्वंस की सूचना पाने को शहर दोनों कान फैलाए आतुर प्रतीक्षा करता रहता।

जो शहर में छूट गए थे, अपने को शहर के चरित्र का संरक्षक मानते थे। यह बात और है कि उनके पास अपना चरित्र था या नहीं। शहर के पास स्वनिधि के रूप में एक कॉफी हाउस था। यहीं संरक्षक गण कठिन मुद्रा में टेबिलें ठोकते, नक्शे बनाते और प्रमाण-पत्र तैयार करते। उनकी बहसें कभी-कभी कॉफी से भी ज्यादा गर्म हो जातीं, तब नौ की जगह

कॉफी हाउस साढ़े नौ बजे बन्द होता। इस महत्वपूर्ण कार्य में संरक्षकों को कॉफी हाउस के बेयरों और साइकिल स्टैंड वाले शारदा, दोनों का सहयोग प्राप्त था। उत्तेजना में कई बार लेखक अपनी साइकिल बाहर ही भूल जाते। शारदा ग्यारह बजे तक उनकी राह देखता, फिर डॉक्टर दरबारी के अहाते में उन्हें बन्द करवा कर चला जाता। लेखकों के लिए वह सूचना-अधिकारी भी था। अकसर वह दूर से आते लेखक को देखकर ही समझ जाता, उसे किस की तलाश है। साइकिलों के आधार पर सही सूचना देकर वह उसे रवाना कर देता।

कॉफी हाउस में एक-एक मसला कई-कई दिनों तक चलता जाता, फिर गुट के सबसे ताकतवर आदमी के यहाँ बैठक होती। उसमें मीन-मेख करके जो नोट तैयार होता, वही चेलों द्वारा अन्तिम स्थापना की शक्ल में आत्मसात् कर लिया जाता। कभी-कभी मामला इतना आसान न होता। एक ही जगह दो-दो नेता टेबिल पर होते। तब दो गुट बन जाते। दोनों का प्रभावक्षेत्र अलग-अलग टेबिल पर तय पाता। साहित्य में हालत यह थी कि जब तक यह शहर किसी लेखक को दिशा न दे, तब तक उसका भविष्य [illegible] आकाश के पक्षी-सा अनिश्चित रहता। इसीलिए हर नया लेखक साल-दो साल बाद यहाँ अवश्य आता, जैसे कई लोग अजमेर शरीफ जाया करते हैं।

शहर आसपास में किसी को गिनता नहीं। इस [illegible] रहस्यमयी है सभी को अक्सर [illegible] प्रकाशन की देहली तक [illegible] सिलसिला, यहाँ के [illegible] कॉफी पी, हर लेखक [illegible] किताबें खरीद [illegible] [illegible] द्वारा प्रकाशक के यहाँ [illegible]

[illegible] की [illegible] में [illegible] और

अच्छी किताबों की ताक में वे अकसर लगे रहते । यों पढ़ने को वे लक्ष्मी स्टोर्स में मिलने वाला सचित्र साहित्य भी पढ़ते थे, लेकिन वह सब पढ़ना गोलगप्पे खाने की तरह था। कभी कुछ भी मतलब का न मिलता, तो प्रेस के सारे प्रूफ ही पढ़ डालते, बल्कि अब तो सिद्ध प्रेसवालों की तरह वे हर रचना को प्रूफ समझकर पढ़ जाते थे और हर प्रूफ को रचना समझकर। इतने वक्फे मे जहां उन्हें बहुत-सी बातें पता चली थी, वहां सबसे बड़ी बात यह कि प्रेस का चक्का कभी रुकना नहीं चाहिए। इसी तर्क पर उन्होंने कई ऐसी पुस्तकें छाप डाली थीं, जिनकी छपाई का आज तक भुगतान नहीं हुआ था। शहर मे कई गश्ती प्रकाशक चक्कर लगाया करते थे। वे सेल-टारगेट पूरा करने के सिलसिले में हमेशा शहर से फरार रहते।

मशीन के चलते मकान में जिन्दगी थी, वरना छुट्टी के दिन उकताहट का दिन था। छः दिन की हाड़तोड़ मेहनत के बाद सातवें दिन की निष्क्रियता बड़ी फिजूल-सी लगती। हर घड़ी साथ रह रिश्ते की वह नरमोदा संवेदना भी चुनौती पाती जा रही थी। खाने का समय एक आवाज़ समय था। चटाई पर आलू मटर, चपाती और धूप—यह चुप परिवार नियोजन का युग था। उषा ने पहचाना और एक दिन गोलियां कमोड के रास्ते फेंक दीं।

इसीलिए लाखों करोड़ों औरतों की तरह जब वह भी गर्भवती हुई, उसे कोई विस्मयानुभूति नहीं हुई। बल्कि अपनी शरीर-रचना के औसतपन पर कुछ असन्तोष ही हुआ। इसी हिसाब से वह बेडौल इन्तजार बनती गई। इन्तजार से उसे सख्त चिढ़ थी, फिर वह चाहे बस का हो चाहे बच्चे का। उसने यह भी जाना कि सिर्फ गर्भस्थ जीव को ही शिशु कहा जा सकता है। गर्भ के बाहर शिशु इतने मौलिक तरीके से

आत्रामक रहता है कि शान्ति और वात्सल्य एक दूसरे से रगड़ खाते रहते हैं।

अस्पताल में बच्चा पालने में पड़ा-पड़ा चिल्ला रहा था। वह पांच दिन से लगातार चिल्ला रहा था। पांच दिन पहले उषा चिल्ला रही थी। अब वह शान्त थी। हलकी, निश्चिन्त और कमजोर। नहीं वह गलत सोच रही थी। वह न हलकी थी न निश्चिन्त। वह कुढ़ रही थी। उसका मन हो रहा था, अभी इसी क्षण बच्चे के लम्बे नाखून उग आएं और पैने-नुकीले दांत, जिनमे वह सबको बकोट डाले या काट खाए। उषा की इच्छा हो रही थी, बच्चा अचानक जिन्न की तरह बड़ा हो जाए, हृष्ट पुष्ट और विशाल। वह कमरे में बैठे उन सारे लोगों के पकड़ कर बाहर निकाल दे—वे लोग, जो जब से वह पैदा हुआ है—उसे किर्चे-किर्चे बांट रहे थे, उसकी शकल उसके बाप पर इसका रंग उसके ताऊ पर, उसकी उंगलियां उसकी बुआ पर उसकी आंखें उसकी ताई पर, उसकी हगनी-मुतनी···यहां तक कि उषा के पास उसका कुछ भी नहीं बचा था जिसे वह अपना कह सके। तभी बच्चा जोरों से चिल्लाया। कुछ अनुभवी लोगों ने सिर हिलाया, 'हां इसका स्वभाव मां पर गया है।' उन्होंने उषा की ओर आलोचनात्मक नजर डाली। उषा के मन में तीखा विरोध हुआ। अगर बड़ा होकर यह नागरवाला या मायोसिंह निकला, तो लोग क्या कहेंगे! खैर, लोग कुछ-न-कुछ अवश्य कहेंगे। वे कहते ही रहते थे।

उषा को उसके बड़े होने का बेसब्री से इन्तजार था। उसे अहसास था, इसे बड़ा होने में बरसों लगेंगे। यह बात उसे खिन्न कर रही थी। ये पिछले नौ महीने उसने इसी खिन्नता में बिताए दिनों उसकी परिचित औरतें उसके पास आती थीं और सहानुभूति के बोल ले ले। वे बताती कि उन्होंने

अपने-अपने पप्पू कितनी मुश्किल से पैदा किए थे। डिलिवरी में कितना रुपया खर्च हुआ और मोहल्ले में कितने किलो लड्डू बंटे। इन बातों में उषा की कोई दिलचस्पी नहीं थी। उसकी खास दिलचस्पी बच्चा पैदा करने में भी नहीं थी। वह नहीं चाहती थी यह तमाशा देखू भीड़, ये नर्सें ये पेट पर पड़े टांके और यह कैद। वह, जो जीवन में विलक्षण और अद्वितीय बनाना चाहती थी, एक औरत, बेवकूफ औरत की तरह खांसती हुई बिस्तर पर पड़ी थी।

पांच दिनों में अस्पताल में सैकड़ों बच्चे पैदा हो चुके थे। सुनने में आया, जिस रात यह बच्चा पैदा हुआ, उस रात सबसे ज्यादा बच्चे पैदा हुए। पैदा होते ही औसतपन में शरीक हो जाना कैसा लगता होगा।

लोग बच्चे का नाम पूछ रहे थे। उषा ने कहा, उसने इस बारे में अभी सोचा नहीं। लोग उलाहना देने लगे, वह अब तक क्या करती रही। उसे कम-से-कम नाम सोचकर तैयार रखना चाहिए था और एक दो स्वेटर। उषा का मन हो रहा था वह जोर से चिल्लाए, 'भाइयो और बहनो! इसका नाम बबलू है। इसका वजन दो किलो पचास ग्राम है। हम इसे अमूल स्प्रे पिलाएंगे। बड़ा होकर यह सेंट जोजेफ में जाएगा। यह हमें 'बाबा ब्लैकशीप' सुनाएगा। यह अपनी मा को ममी और बाप डैडी कहा करेगा। यह अपनी सालगिरह पर मोमबत्तियां बुझाएगा। यह पहली गाली अंग्रेजी में देना सीखेगा। यह बाटा के जूते पहनेगा। यह टाटा का तेल लगाएगा। यह···आप लोग सब्र रखिए, यह सब करेगा···।'

उषा लेटे-लेटे निश्चय करना चाहती थी कि वह इसे स्कूल नहीं भेजेगी, वह इसे 'दरेनको' कविता याद न होने पर नहीं पीटेगी, वह इसे नौकरियों के लिए टक्करें नहीं मारने देगी, पर उसका चालाक विवेक कह रहा था, वह इससे यह सब करवाएगी

और कुछ साल बाद जब वह घूमट बुढ़िया हो जाएगी, तो सारा दिन टर्र-टर्र कर इसका और इसकी बीवी का जीना हराम कर देगी।

जो अस्पताल में जच्चा-बच्चा देखने के नाते से आते थे, जल्द ही बिना चाय के छोटे-छोटे स्टूलों पर बैठे ठंडे पड़ जाते। वे खिसकना चाहते। उठते समय उनके चेहरों पर एक हल्की उदासी होती···अपने बच्चे बड़े हो जाने की···और एक खुशी···इन लोगों के चंगुल से छूटने की। इन दोनों की मस्ती भड़ने देखना न जाने उनकी कब की तमन्ना थी।

उषा को जिन्दगी की इस नई रद्दोबदल से उलझन-सी हो रही थी। उसकी आगामी योजनाओं में यह बच्चा फिट नहीं हो पा रहा था। अभी तो जिन्दगी का गणित ठीक-ठीक लिखा भी नहीं गया था। पर अजय जोश में था। वह बच्चे की टिमटिमाती आँखें, उसकी गुलाबी मुट्ठियाँ, उसका उजला रंग देख-देखकर विभोर हो रहा था। उषा ने कुछ कहना चाहा तो अजय ने बात काट दी, 'नहीं कुछ गड़बड़ नहीं हुआ है। हर जगह यह हमारे आगे-आगे चॉकलेट खाता दौड़ता फिरेगा।'

उषा को लग रहा था उसके अन्दर का कोई नाजुक हिस्सा टूट कर खंड-खंड हो गया है। वह हवाई जहाज-सी क्रैश कर गई है। एक बेहिसाब उदासी और थकान उसके शरीर और मन को जकड़े थी। उसे लगा उसे अब बहुत कुछ भूल जाना होगा···यह कि उनके यहां सुबह-सुबह अखबार आता था, यह कि उन्हें घटी दरों पर फिल्में देखना प्रिय था, यह कि उसे कलफ लगी धोती घर में पहनना बहुत पसन्द था···उसे अब सही मानों में स्त्रियोचित गुणों से मंडित होना था। यानी उसे अब कुछ प्रतिशत यशोदा मैया और कुछ प्रतिशत ललिता पवार बनना था। उषा जानती थी, अब से जीने का समूचा मुहावरा ही कलाबाजी खा जाएगा।

बच्चे ने जगन के साथ तत्काल सह-अस्तित्व की नीति अपना ली। जगन की मौजूदगी उस पर माइल्डवाटर का असर करती। इसके विपरीत उषा के खिलाफ उसने मोर्चा बना लिया, उषा की बाँहों में वह बेतहाशा चिल्लाता और तब तक चिल्लाता रहता, जब तक वन-मैन-रेस्क्यू पार्टी जगन उसे आकर थाम न लेता। बच्चे ने जहाँ उसे आह्लाद के दुर्लभ क्षण दिए थे वहाँ उषा को मूत-भरे तौलियों, दूध की जूठी बोतलों, पोतड़ों से घेर, घर की घुड़साल में बन्द कर पटक दिया था। वह इंजन की अनिवार्यता-सा चिल्लाना, उषा दौड़ी आती तो पाती उसने अपने ही सिर के बाल मुट्ठी में भींच रखे हैं। बोतल की निपल मुँह से हटा कर वह अपनी उंगलियाँ मुँह में डाल लेता और भाय-भाय रोता। शाम में जब बिस्तर सार्वजनिक मुतारी-सा महकता वात्सल्य के सभी प्रतिमान चरमराने लगते।

अब जिन लोगों को उषा से मिलना होता वे ऊपर आकर मिलते। आगन्तुकों के विरोध में बच्चा ज्यादा कुछ न करता, सिर्फ सबसे ऊँचे स्वर में रोना शुरू कर देता, फिर बच्चे के अलावा किसी विषय पर बातचीत असम्भव हो जाती—इसका नाम क्या है ? इसे कोई तकलीफ हो रही है शायद ? सर्दी आने वाली है, इसे स्वेटर जरूर पहनाया कीजिए। इसकी नाक में शायद कूड़ा है, बेबी जॉनसन फुरेरी से निकाल दीजिए। मालिश किया कीजिए इसको, देखिए टाँगें कितनी कमजोर हैं। पालना बहुत दूर रखा है, साथ सुलाया कीजिए। क्या रात को चौंकता है ? इसके सिरहाने चाकू की नोक रख दीजिए ...।'

उषा को लगता उसके जीवन में अब बस बालकांड-ही-बालकांड रह गया है। जगन ऊपर आता प्रश्नों से लबालब भरा, "इसे नहला दिया, पानी ठंडा तो नहीं था ? दूध पिया ? कितने औंस ? कब सोया ? टॉनिक कैसे भूल गईं ? आज डॉक्टर को

दिखाना है ? बेबी ब्रश ले आई ? यह कुछ कमजोर लग रहा है।'

उषा यानी वह सिर्फ बेबी बुलेटिन ब्रॉडकास्टर की हैसियत रखती है। आठ दस गीली चुम्मियां बच्चे को दे जगन दौरे भाग जाता, बिना एक बार ध्यान दिए कि उषा उसे किन नजरों से देख रही है ? अगर प्रेम के बारे में उषा कुछ पूछती, जगन कहता, 'इन छोटी-छोटी बातों को छोड़ो। तुम बच्चे को अकेला न छोड़ा करो, डर सकता है।' उषा को लगता बच्चे के प्रति इतनी फिक्र सब भी एक निजी छुपी साजिश है, उसे अवरुद्ध करने की। उसे एक क्षण को भी यह नहीं लगता कि वह अपना गन्तव्य पा गई है। जो हमेशा से समूची, स्वतंत्र इकाई बन जाना चाहती थी, उसे टिमटिमाती आंखों वाला एक शिशु यथार्थ पकड़ा दिया गया था, यह तुम्हारी जिम्मेदारी है। अब तक जगन ने जीवन में उसे दोस्त का दर्जा दिया था। अब उषा को लगा जगन की अपेक्षाएं बदल गई हैं। वह अपनी किसी व्यस्तता, तनाव, परेशानी, शरारत में उसे हिस्सेदार न बनाता। इतनी बड़ी जमीन दिखाने के बाद उसने उषा को इस १२×१४ की दुनिया में नजर बन्द कर दिया था। ऊपर से उषा से यह उम्मीद की जा रही थी कि वह अपनी कैद को अभिभूत होकर भोगे और खुश हो।

उषा को यही शिकायत थी। जगन और उसका बेटा, दोनों उसे पेचकस की तरह इस्तेमाल कर रहे थे। जीवन भर अब उसे इस्तेमाल होना था और कृतज्ञ। सोचना समझना, निर्णय लेना, सफल होना, व्यस्त होना, सब जगन के प्रिविलेज हो गए थे, उसे सिर्फ वेजिटेट करना था।

बच्चे का नाम वे उऋण रखना चाहते थे, लेकिन अंग्रेजी में लिखने पर यह मूत बन जाता इसलिए उन्होंने फिलहाल उसका नाम बबलू रख दिया, लेकिन बबलू अपने आपको बंबलू

हीं समझता था। वह उषा और जगन को बबलू समझता। उसकी हरकतों में नाटकीयता कूट-कूट कर भरी थी। आधी रात में वह हृदय-विदारक स्वर में रोना शुरू करता। जगन के उठने पर उषा जल्दी-जल्दी दूध घोलती और बनाने के बाद पाती बबलू खुद बखुद सो गया है, शान्त और बेफिक्र। उषा की नींद तबाह हो जाती। वह जगन की ओर देखती। वहां कोई हमदर्दी न होती, बल्कि वह बच्चे के लिए त्याग करने के मौलिक तरीके ईजाद करने में लगा रहता। उषा के अपने मां-बाप, जगन के मां-बाप, सब, इस स्थिति को भाग्य, कृपा, धर्म, कर्तव्य जैसे शब्दों से तोल-तोल कर और जानलेवा बना रहे थे। सारे शहर को एकबारगी मजा आ गया था। उषा की बेफिक्री, निश्चिन्तता, आजादी, उसकी इकाई, सब डगमगा गई थीं और कोई इस बात को महत्त्व नहीं देना चाहता था।

उस दिन यों ही बात का बतंगड़ बनता गया था। बाद में वह कितनी शर्मिन्दा हुई थी। उनकी शादी की सालगिरह थी। सुबह कैलेन्डर से धूल पोंछते समय उषा को याद आया था और वह खिल उठी। उसने बड़ी तैयारी से खाना बनाया, अमरस, दही बड़े, मटर अंडे की तरकारी और रोटी। बीच में वह एक बार नीचे उतर कर देख आई थी, जगन प्रेस में नहीं था। तब तक उसका बहुत काम बकाया था। वह ऊपर आ गई। बबलू को नहला, सुलाकर उसने अपनी ओर ध्यान दिया। बहुत दिनों बाद उसने फाउन्डेशन क्रीम और लिपस्टिक का इस्तेमाल किया था। वह मन-ही-मन चाह रही थी कि उसका मेकअप ताजा रहने तक ही जगन लौट आए, लेकिन हाथ पर बंधी घड़ी तीन से चार, चार से पांच और पांच से छ बजाती गई, जगन नदारद! ऊपर से प्रेस के कर्मचारी, कभी कागज कभी फर्मा, कभी एडवान्स के लिए उसे ऊपर-नीचे दौड़ाते रहे। तभी बिजली

चली गई। कुछ देर तो छत पर उजाला था। बबलू साइकिल चलाता रहा। अंधेरा होने पर वह भी ठिनठिन करने लगा।

उषा ने किसी तरह ढूंढ-ढांढकर लालटेन जलाई तथा बबलू और लालटेन लेकर नीचे चली गई।

जिस समय वह कुक देख रही थी, बबलू ने प्रेस में दौड़ लगानी शुरू कर दी। लालटेन और मोमबत्तियों के बावजूद प्रेस में काफी अंधेरा था। जैसा कि उषा को डर था, वह लड़खड़ाकर गिरा। होंठ में शायद कुछ चुभ गया था। खून टपकने लगा। उषा ने जल्दी से फैरस फॉस लगा दी, लेकिन होंठ सूज आया।

यही वक्त जगन के वापस आने का था।

वह सारा दिन परेशान व उत्तेजित घूमा था। मशीन की किस्त जमा करने का आखिरी दिन था। कहीं से प्रबन्ध नहीं हो पाया था। उन लोगों ने भी पैसा नहीं दिया था, जिनसे मिलने का वादा था। आखिर भारी सूद पर पैसा मिला था, वह भी अपना स्कूटर गिरवी रखकर। अपने लखपति ग्राहकों के प्रति उसका मन वितृष्णा से भर आया था। उसे मालूम था, दो दिन बाद ही ये लोग पैसा देने खुद आएंगे। मगर उसने जिद पकड़ ली थी कि वह वक्त पर किस्त जमा करेगा और इन तमाम लोगों को वक्त पड़ने पर सूद समेत सबक सिखाएगा।

आधे रास्ते आते-आते तक उसने मूड ठीक करने की कोशिश की। पेस्ट्री शॉप से उसने पाइनएपल पेस्ट्रीज खरीदीं। उसे यह भी खयाल आया कि बबलू उषा को परेशान कर रहा होगा।

उसने देखा प्रेस का फाटक अभी तक खुला पड़ा था। कायदे से फाटक छः बजे बन्द हो जाना चाहिए था। ऑफिस में एक मोमबत्ती टिमटिमा रही थी।

जगन ने जल्दी से सबको भेजकर फाटक बन्द किया। तभी बिजली आ गई।

जगन को अफसोस हुआ कि मशीनमैन जा चुके थे। दोएक घंटे छपाई वे खुशी से कर देते।

ऊपर आकर उसने देखा बबलू सूजा होंठ लिए सो रहा है।

वह बरस पड़ा।

'कहाँ गिरा दिया इसे?'

'मैंने नहीं गिराया!'

'बदतमीजी मत करो! कैसे लगी इसे चोट?'

उषा नहीं बोली।

'प्रेस का फाटक खुला लावारिस पड़ा था। कम-से-कम तुम सबकी छुट्टी कर दरवाजा तो बन्द कर सकती थीं।'

उषा ने ठंडे ठंडे स्वर में कहा, 'मेरा प्रेस, मेरा बच्चा, बस! बाकी सब मर चुके हैं तुम्हारे लिए।'

'यही रवैया रहा तो जल्द ही मर जाएंगे।' जगन ने कहा।

वह झुककर बबलू के हाथ-पैर टटोलने लगा। तसल्ली हो जाने पर उसने उसे चूमा और उसके पास लेट गया।

उन दोनों को यों पड़े देख उषा को तीखा असन्तोष हुआ। उसे लगा, जगन को अब उसकी कोई जरूरत नहीं रह गई है।

जगन ने कैलेन्डर की तरफ देखकर कहा, 'आज क्या तारीख है?'

'पच्चीस।' उषा ने जान-बूझकर कहा।

जगन चिढ़ गया, 'देखो, मुझसे हर समय ऐंठ कर मत बोला करो। मैं कभी तुम्हारे लिए सॉफ्ट महसूस भी करना चाहूं, तो तुम मोहलत नहीं देती। तुम्हें अच्छी तरह पता है, आज पच्चीस तारीख नहीं है।'

'आज पच्चीस है अथवा होती तो तुम्हें क्या फर्क पड़ता और आज पच्चीस नहीं, तो तुम्हें क्या फर्क पड़ा है। वक्त तुम्हारे लिए इसी तरह सोमवार, मंगलवार होता रहेगा। जब

ग्यारही साथ तुम्हें सैन्डर देने आएँगे, तब तुम्हें पता चलेगा कि मार गुजर गया।'

जगन अन्दर तक तिलमिला उठा। यह औरत उसे सिर्फ एक भाजी समझती है। इसमें और उन फूहड़ औरतों में क्या फ़र्क है, जिन्हें बचपन में उसने अपने मुहल्ले में देखा और जिनसे उसने हमेशा नफ़रत की।

सुबह चार बजे जब बड़ी सीलिंगदार घड़ी एकायक बज गई थी, वह नींद से उठा था। सीने पट्टे के लिए गर्म कोका लेकर जब वह ऊपर आ रहा था, उसे याद आया आज पाँच तारीख है, उसकी शादी की वर्षगांठ। कमरे में उसने चाहा था, वह उषा को उठा दे। बबलू उषा पर टांग चढ़ाए, उसकी बाँह पर सिर रखे सो रहा था। दोनों के बदन से मच्छरों की दुश्मन क्रीम ओडोमास और पॉन्ड्स पाउडर की मिली-जुली महक आ रही थी। दिन-भर की थकी उषा को सोने देना चाहिए, ऐसा सोच कर वह लेट गया था। अभी कुछ देर पहले उसने सोचा था, आज शाम वे बाहर जाएंगे।

लेकिन इस वक्त भी उषा को लेकर कहीं जाने की वह कल्पना नहीं कर पाता था। वह साक्षात् चुनौती और आतंक थी।

उसने सिर्फ इतना कहा था, 'अच्छी पत्नियां रात में मच्छरों की दुश्मन क्रीमों का इस्तेमाल नहीं किया करतीं।'

उषा का पारा २१२° से सीधा शून्यांक पर पहुंच उसे पानी-पानी कर गया था।

उसने लाल चेहरे से कहा, 'जगन ! आइ एम सॉरी, मैंने सोचा था तुम्हें याद नहीं है, प्लीज़...।' उलझन, झेंप और शर्मिन्दगी में वह बोल नहीं पाई।

शादी की सालगिरह तत्काल मान ली गई थी, लेकिन उसमें वह हलकापन, वह ताजगी नहीं थी, जिसकी आज दोनों

इतने वर्षों में जगन जान गया था, कहाँ काट खाने से सबसे ज्यादा दर्द होता है।

उषा को लगा, वह उषा नहीं, पिनकुशन है।

उसने कहा, 'इसकी जरूरत नहीं है। इतनी कुर्बानी तो अपनों के लिए की जाती है। बीमे को तुम सुख का पर्याय कब से मानने लगे हो?'

उसे भी पता था, कहाँ सब से ज्यादा दुखता है। उसने वही नस दबाई।

घंटे-भर बाद जब वह ट्रे में खाना लगाकर लाई, उसने देखा जगन बबलू से लिपटकर सो रहा है।

नींद से उसे उठाने का परिणाम वह जानती थी, इसलिए उसने इसकी कोशिश नहीं की। चुपचाप ट्रे स्टूल पर रख कमरे में बिखरी चीजें समेटने लगी।

वह चाह रही थी, नीचे से फोरमैन या मशीनमैन किसी काम से आकर जगन को आवाज दें। जगन चाहे कितनी गहरी नींद में हो, प्रेस की पुकार पर वह एकदम उठ बैठता।

पक्की तौर पर जानने के लिए कि वह सो रहा है या नहीं, उषा ने एक बार धीरे से बबलू को अपनी ओर खींचने की कोशिश की।

जगन ने और भी कसकर बबलू को अपने से सटा लिया।

उषा समझ गई वह सो नहीं रहा है।

उसे अन्दाज था कि इस वक्त उसे जगन के बालों में उंगलियां फेरते हुए धीरे से माफी मांग लेनी चाहिए।

लेकिन उसे आलस आ गया।

मान मनौवल के सब तरीके अतिपरिचित होकर निरर्थक ...े थे। इसी तरह रोज समझौते, एक स्थगित सम्भावना से

की बोतलों के साथ-साथ दीवान के नीचे लुढ़का दिए जाते। ा को लगता उसकी अपेक्षा जगन ज्यादा मुक्त और प्रसन्न है र जगन को लगता, उषा।

जगन को पता था इस समय उठने का कोई मतलब नहीं। जो कुछ उषा ने पकाया होगा, वह खाद की तरह अखाद्य गा। आज वह खासा परेशान रहा था। गांधी मेडिकल कॉलेज वार्षिक पत्रिका उसने छापी थी। उसमें पचहत्तर पृष्ठ के ज्ञापन थे। आज ही ग्वालियर से उसे चिट्ठी मिली थी कि पृष्ठ विज्ञापन पत्रिका में से गायब हैं। उसने प्रेस में और पतरी के यहां बहुत ढूंढा था, पृष्ठ नहीं मिले थे। जगन का याल था, उसने उन फर्मों का मशीन-प्रूफ पास किया था, वे में छपे थे। अब बहस का भी वक्त नहीं था। तुरत कम्पोज राकर वे पृष्ठ फिर छापने थे और पत्रिका वापस मंगाकर पुनः ाईंड करवानी थी। हानि और परेशानी प्रेस में साथ-साथ ाती थीं। उसे ही पता था, वह किन मुश्किलों में प्रेस चला रहा ा। आए दिन बैंक की किस्त, कर्मचारियों का वेतन, बाजार ा खर्च चुकाकर वह इतना पस्त हो जाता कि अपने खर्च के ारे में उसे सोचना बर्दाश्त न होता; लेकिन पहली तारीख को उषा उससे कुछ इस आवाज में पैसा मांगती कि नहाया-धोया जगन फिर से पसीना-पसीना हो जाता। उसे लगता उषा उसे ऐसी मशीन समझती है, जिसे दबाते ही पैसा निकलकर बाहर आ जाना चाहिए। नीचे आकर वह छब्बीस सौ की रफ्तार पर ऑटोमैटिक चालू कर देता और उसकी धातु-लय में उषा की नुकीली आवाज भुलाने की कोशिश करता। कभी-कभी नीचे से जी-तोड़ मेहनत के बाद ग्यारह-बारह बजे जगन ऊपर आता, तो उषा नींद से उठकर, बिना उसकी ओर देखे, भारी आंखों से, उसे खाना परोस देती और पास ही माँ निदासी बैठ जाती कि जगन को लगता कि वह इस ढाबे का अन्तिम ग्राहक है। इस

खाली बोतलों के साथ-साथ दीवान के नीचे लुढ़का दिए जाते। उषा को लगता उसकी अपेक्षा जगन ज्यादा मुक्त और प्रसन्न है और जगन को लगता, उषा।

जगन को पता था इस समय उठने का कोई मतलब नहीं है। जो कुछ उषा ने पकाया होगा, वह खाद की तरह अखाद्य होगा। आज वह खासा परेशान रहा था। गांधी मेडिकल कॉलेज की वार्षिक पत्रिका उसने छापी थी। उसमें पचहत्तर पृष्ठ के विज्ञापन थे। आज ही ग्वालियर से उसे चिट्ठी मिली थी कि दस पृष्ठ विज्ञापन पत्रिका में से गायब हैं। उसने प्रेस में और दफ्तरी के यहां बहुत ढूंढा था, पृष्ठ नहीं मिले थे। जगन का खयाल था, उसने उन फर्मों का मशीन-प्रूफ पास किया था, वे फर्म छपे थे। अब बहस का भी वक्त नहीं था। तुरंत कम्पोज कराकर वे पृष्ठ फिर छापने थे और पत्रिका वापस मंगाकर पुनः बाइंड करवानी थी। हानि और परेशानी प्रेस में साथ-साथ आती थीं। उसे ही पता था, वह किन मुश्किलों में प्रेस चला रहा था। आए दिन बैंक की किस्त, कर्मचारियों का वेतन, बाजार का खर्च चुकाकर वह इतना पस्त हो जाता कि अपने खर्च के बारे में उसे सोचना बर्दाश्त न होता; लेकिन पहली तारीख को उषा उससे कुछ इस आवाज में पैसा मांगती कि नहाया-धोया जगन फिर से पसीना-पसीना हो जाता। उसे लगता उषा उसे ऐसी मशीन समझती है, जिसे दबाते ही पैसा निकलकर बाहर आ जाना चाहिए। नीचे आकर वह छब्बीस सौ की रफ्तार पर ऑटोमैटिक चालू कर देता और उसकी धातु-लय में उषा की नुकीली आवाज भुलाने की कोशिश करता। कभी-कभी नीचे से जोड़-तोड़ मेहनत के बाद ग्यारह-बारह बजे जगन ऊपर आता, तो उषा नींद से उठकर, बिना उसकी ओर देखे, भारी आंखों से, उसे खाना परोस देती और पास ही यों निदासी बैठ जाती कि जगन को लगता कि वह इस ढाबे का अन्तिम गाहक है। इस

इतने वर्षों में अपन जान गया था, कहाँ काट खाने से सबसे ज्यादा दर्द होता है।

उषा को लगा, वह उषा नहीं, पिनकुशन है।

उसने कहा, 'इसकी जरूरत नहीं है। इतनी कुर्बानी तो अपनों के लिए की जाती है। बीमे को तुम सुख का पर्याय कब से मानने लगे हो?'

उसे भी पता था, कहाँ सब से ज्यादा दुखता है। उसने वही नस दबाई।

घंटे-भर बाद जब वह ट्रे में खाना लगाकर लाई, उसने देखा जगन बबलू से लिपटकर सो रहा है।

नींद से उसे उठाने का परिणाम वह जानती थी, इसलिए उसने इसकी कोशिश नहीं की। चुपचाप ट्रे स्टूल पर रख कमरे में बिखरी चीजें समेटने लगी।

वह चाह रही थी, नीचे से फोरमैन या मशीनमैन किसी काम से आकर जगन को आवाज दें। जगन चाहे कितनी गहरी नींद में हो, प्रेस की पुकार पर वह एकदम उठ बैठता।

पक्की तौर पर जानने के लिए कि वह सो रहा है या नहीं, उषा ने एक बार धीरे से बबलू को अपनी ओर खींचने की कोशिश की।

जगन ने और भी कसकर बबलू को अपने से सटा लिया।

उषा समझ गई वह सो नहीं रहा है।

उसे अन्दाज था कि इस वक्त उसे जगन के बालों में उंगलियां फेरते हुए धीरे से माफी मांग लेनी चाहिए।

लेकिन उसे आलस आ गया।

मान मनौवल के सब तरीके अतिपरिचित होकर निरर्थक हो चुके थे। इसी तरह रोज समझौते, एक स्थगित सम्भावना से दोनों के इर्द-गिर्द कुछ देर मंडराते, फिर खाम खत्म होते तक

खाली बोतलों के साथ-साथ दीवान के नीचे लुढ़का दिए जाते। उषा को लगता उसकी अपेक्षा जगन ज्यादा मुक्त और प्रसन्न है और जगन को लगता, उषा।

जगन को पता था इस समय उठने का कोई मतलब नहीं है। जो कुछ उषा ने पकाया होगा, वह खाद की तरह अखाद्य होगा। आज वह खासा परेशान रहा था। गांधी मेडिकल कॉलिज की वार्षिक पत्रिका उसने छापी थी। उसमें पचहत्तर पृष्ठ के विज्ञापन थे। आज ही ग्वालियर से उसे चिट्ठी मिली थी कि दस पृष्ठ विज्ञापन पत्रिका में से गायब हैं। उसने प्रेस में और दफ्तरी के यहां बहुत ढूंढा था, पृष्ठ नहीं मिले थे। जगन का खयाल था, उसने उन फर्मों का मशीन-प्रूफ पास किया था, वे फर्में छपे थे। अब बहस का भी वक्त नहीं था। तुरंत कम्पोज कराकर वे पृष्ठ फिर छापने थे और पत्रिका वापस मंगाकर पुनः बाइंड करवानी थी। हानि और परेशानी प्रेस में साथ-साथ आती थीं। उसे ही पता था, वह किन मुश्किलों में प्रेस चला रहा था। आए दिन बैंक की किस्त, कर्मचारियों का वेतन, बाजार का खर्च चुकाकर वह इतना पस्त हो जाता कि अपने खर्च के बारे में उसे सोचना बर्दाश्त न होता; लेकिन पहली तारीख को उषा उससे कुछ इन आवाज में पैसा मांगती कि नहाया-धोया जगन फिर से पसीना-पसीना हो जाता। उसे लगता उषा उसे ऐसी मशीन समझती है, जिसे दबाते ही पैसा निकलकर बाहर आ जाना चाहिए। नीचे आकर वह छब्बीस सौ की रफ्तार पर ऑटोमैटिक चालू कर देता और उसकी धातु-लय में उषा की नुकीली आवाज भुलाने की कोशिश करता। कभी-कभी नीचे से जी-तोड़ मेहनत के बाद ग्यारह-बारह बजे जगन ऊपर आता, तो उषा नींद से उठकर, बिना उसकी ओर देखे, भारी आंखों से, उसे खाना परोस देती और पास ही यों निदासी बैठ जाती कि जगन को लगता कि वह इस ढाबे का अन्तिम ग्राहक है। इस

टॉनिक का टाइम हो, मासिक धर्म की तारीख हो, लेकिन दिमाग था कि बिना सायलेन्सर के स्टोव की तरह भन्नाता रहता। सबसे ज्यादा दहशत उसे तब होती जब दोस्त लोग सुझाते कि उदासी और अकेलेपन का अचूक इलाज है, एक और बच्चा। स्त्रियों की समस्त शिकायतों में कारगर पुरुषों द्वारा आविष्कृत पुरुष-समाज में यह एक बेजोड़ नुस्खा समझा जाता था।

कुछ साल तो हड़बड़ी और जोश में जल्दी से सरक गए। अब जोगेन्दर को उकताहट होने लगी। प्रेस की परेशानियाँ लगभग वही थीं, जो किसी सुस्त शहर में किसी भी धन्धे में पैदा हो सकती हैं। मेहनत और मुआवजे का कोई अनुपात नहीं था। रोज़ अपने आस-पास मशीनों का वही कर्कश धातु-स्वर, वही प्रूफों का ढेर, पाई के पहाड़ देख जगन को अपनी अर्थहीनता का तीखा अहसास होता। उसका मन होता, नीचे की इस परेशान दुनिया का वह, थोड़ी देर के लिए, ऊपर की सरल दुनिया से विनिमय कर ले। उषा से संवाद की स्थिति में आता तो पाता उषा उषा नहीं है, शिकायतों, फरमाइशों और तुनकमिजाजियों की एक पिटारी है। कभी-कभी वह उसकी बात समझने की कोशिश भी करती, तो बबलू उसे इतना अवकाश न देता कि वह सुझाव भी दे सके। वक्त की मार ने दोनों का धैर्य खत्म कर डाला था। उसकी थकान, जल्दबाजी और चिड़चिड़ाहट पहचान जगन वापस अपनी जेल में पहुंच जाता। जगन और उषा दोहरे स्तरों पर अकेले होते जा रहे थे।

कभी-कभी जगन और उसके दोस्त शाम को घर में इकट्ठे बैठते। जगन ने एक सौ नवासी रुपये का सफरी रिकॉर्डप्लेयर लिया था। मशीनों की गड़गड़ाहट जब दिल के बहुत करीब टकरा उठती, वह घबराकर अपनी परेशानियाँ आधा भोंसले

रती और किसी तरह कमरे की मनहूसियत मिटाती।

एक बार उसने जगन से कहा था।

जगन ने कहा, 'मनहूसियत एक ऐसी छूत है, जो लोगों से दीवारों को लगती है, दीवारों से लोगों को नहीं।'

यह एक वाक्य, वातचीत के मुंह में कपड़ा ठूंस देने के लिए काफी था।

उषा ने जल-भुनकर 'तीसरी कसम' का रेकॉर्ड, प्लेयर पर चढ़ा दिया था···सजनवा बैरी हो गए हमार···जगन ने दो पंक्तियां सुनीं और उठकर सुई जरा आगे खिसका दी···मारे गए गुलफाम···

यह एक स्टीरियोफोनिक लड़ाई थी। सातवें समुद्री बेड़े की तरह अविचल उपस्थित और उप-स्थितियों को उजागर करती।

पता नहीं जीवन को क्या हो गया था, हर स्थिति चाबुक की तरह इस्तेमाल कर ली जाती थी।

मुहर्रम के ठीक तीस दिन बाद आता था चेहल्लुम। महीना भर उस गली में बच्चे-बड़े, संजीदा चेहरों और काले कपड़ों में घूमते दिखाई देते। रोज शाम चक से शुरू होकर जुलूस कोल्हन टोला, रानीमंडी से गुजरता हुआ करबला जाता। चार-पांच साल से यह सब देखते-देखते, जगन परिवार इसका अभ्यस्त हो चुका था।

किसी-किसी वर्ष मुहर्रम और होली आसपास या साथ-साथ पड़ते। तब कोल्हन टोले की सरगर्मियां निराली होतीं। पड़ोस के मकानों में परिवार का एक लड़का बैठा रंग की पुड़िया बांधता, तो दूसरा शाम को गाने के लिए मर्सिये का रियाज करता। बूढ़े पिता सारी सुबह पिचकारियां बनाते और सारी दोपहर ताजिये। चेहल्लुम के फौरन बाद चुपताजिया आ जाता

था और आठ दिन तक बाकायदा ताजिये उठते। गली में दूसरी गश्ती पुलिस को देखकर ही पता चलता था कि होली-मुहर्रम अलग-अलग त्यौहार हैं, इसलिए पुलिस के लिए सम्भावित तनाव के विषय। अन्यथा घरों के आंगन में चलती गतिविधियों को देखकर लगता कि एक का त्यौहार दूसरे की जीविका है।

कई अर्थों में जगन को मुहर्रम ज्यादा पसन्द था। होली की बेमतलब उछल-कूद, धमाचौकड़ी, मेल मिलाई के निरर्थक आदान-प्रदान से कहीं अधिक अनुभूति-सम्पन्न मुहर्रम के जुलूस थे, जिनमें अनुशासन और उद्देश्य की अद्भुत एकरूपता थी।

अन्धेरा घिरते ही पेट्रोमैक्स की रोशनी में पंक्तिबद्ध जुलूस मातम करता निकलता। कुछ बच्चे बेले का हार बेचते बीच में घूमते। जुलूस के साथ होता पैगम्बर साहब का दुलदुल, ऊंचे-ऊंचे अलम, ताबूत, ताजिये पर बुर्कानशीन औरतों की कतार और होती इस सब को बेधती हुई किसी नौजवान की दर्द में डूबी, कलेजे से निकली गमगीन आवाज, जो सुनने वालों की नस-नस में उदासी के नश्तर लगा जाती। उस दिन कुछ इस कदर मायूस माहौल होता कि सुबह से जगन के घर में न रेडियो बजाया जाता, न रेकॉर्डप्लेयर।

उन लोगों के घर का दरवाजा ठीक गली में खुलता था, इसलिए चेहल्लुम पर औरतों-बच्चों की काफी बड़ी भीड़ उन्हीं के यहां इकट्ठी हो जाती। बुर्कानशीन औरतों में से कुछ एक को उषा पहचानती थी। नाड़े बेचने वाले की तीनों पत्नियां आती। ग्लीच वाली मातम देखते हुए बुर्के के अन्दर-ही-अन्दर छाती पीटती रहती और यकायक बेहोश हो जाती। उषा लाख कोशिश करती कि वह थोड़ा पानी पी ले, लेकिन बेहोशी की हालत में भी वह पानी को मुंह न लगाती। पानी के छींटे मुंह के पहले ही वह उठ बैठती और मातम करने लगती,

जैनब कर्बला में प्यासे शहीद हो गए, हाय!

सकीना तुम पर भी उमर उस्मान को रहम नहीं आया, हाय !
अली असगर तुझे क्या हो गया भैया, हाय हुसैन ! हाय हुसैन !
हाय हुसैन ! हाय हुसैन !' हारकर उषा कोशिश छोड़ देती।
छोटे-छोटे बच्चे भूख-प्यास से परेशान, ढलती दोपहर तक बारजे
में धूप में खड़े रहते।

वह भी चेहल्लुम का रोज था। उस दिन भी सुबह से गली
में फुलौरी वाले, जलेबी वाले चक्कर लगा रहे थे। गली आज
बिलकुल साफ थी। पिछली रात ही औरतों ने अपने उधड़े बुर्के
सी-पिरोकर दुरुस्त कर लिए थे।

सबसे आगे बड़े आदमियों का जुलूस था, उसके पीछे नौज-
वानों का, फिर छोटे बच्चों का। छोटे लड़कों के जुलूस में तीन
वर्ग बन गए थे। कुछ दस से बारह साल के लड़के थे, जो अंजु-
मने-इसलाम की सैन्डो बनियान और काली निकर पहने सम-
वद्ध मातम कर रहे थे। उनके पीछे छह से आठ साल के बच्चे
थे और सबसे पीछे चार-पांच साल के बच्चे। ये छोटे बच्चे नंगे
बदन थे। पसीना उनके बदन पर ओस की बूंदों-सा चमक रहा
था। उनसे भी पीछे दो घुड़सवार पुलिस और कई सिपाही थे।
गली में जहां-जहां मोड़ आते थे, वहां-वहां पुलिस की एक छोटी
टुकड़ी तैनात थी। हुसैनी के इमामबाड़े में सीढ़ियों पर माइक्रो-
फोन रखा था, जहां जनाब रईस अहमद इमाम हुसैन की याद में
संजीदा तकरीर कर रहे थे। इसके बाद रऊफ जैदी ने जुलूस में
माइक सम्भाल नौहे का पहला बोल उठाया।

'कहती थी बहन कैसे असगर को भुला दूंगी
भैया की जुदाई में जान अपनी गंवा दूंगी।'

रऊफ जैदी एक पंक्ति गाता, सारा जुलूस उसे उसी तर्ज में
दोहराता, फिर वह अगली पंक्ति पर जाता

'यह लाश तेरी असगर ले जाऊंगी महशर में
किसने तुझे मारा है बाबा से बता दूंगी।'

उसके बाएं हाथ में छोटी-सी डायरी थी, जिसमें दुनिदा और मर्सिये और नौहे लिखे हुए थे। दायां हाथ उसने सीने पर रखा हुआ था। रऊफ़ की ग़मगीन शक्ल, संजीदा अंदाज़ और दर्द-भरी आवाज़ से मोहल्ले की जवान होती लड़कियों के दिल पहले से ही बैठे जा रहे थे। मोहब्बत, निकाह वग़ैरह के सपने आंखों में छुपाए अफ़शां, शीरीं, परवीन, ममा सब बारजे पर खड़ी नौहा सुन रही थीं और मन-ही-मन दोहरा रही थीं।

'मैं छोटी हूं घर-भर में पानी को मिला लेकिन
तुम मुझसे भी छोटे हो, मैं तुमको पिला दूंगी।'

असगर से कहा रोकर मासूम सकीना ने
'भैया तेरे मातम में दुनिया को रुला दूंगी।'

रऊफ़ जैदी की दर्द में डूबी आवाज़ सुन ऊषा का भी कलेजा हिल गया। वह औरतों के बीच बारजे पर खड़ी थी। जहां छोटे-छोटे बच्चे इकट्ठा थे, उस तरफ़ बबलू भी अपनी नन्हीं कुर्सी जमाए बैठा था। हर साल गली में यह दृश्य देखकर वह इसका अभ्यस्त हो गया था। सामूहिक हाहाकार होते देख वह ज़रा न घबराता, बल्कि वह भी नीचे दोनों हाथों से धड़ाधड़ मातम शुरू कर देता।

ऊषा को अभी खाना बनाना था। उसने देखा बबलू मज़े से बच्चों से घिरा बैठा है। उसने सभी से कहा वह बबलू का ध्यान रखें और खुद रसोई में चली गई। जगन भी प्रेस में था। प्रेस का बड़ा दरवाज़ा मातम करने वालों से खचाखच भरा था।

देर तक मातम देखते-देखते बबलू को प्यास लग आई।

गया है। कुछ आदमी छत पर चढ़े जा रहे हैं। कुछ कपरंत के रास्ते भाग रहे हैं और नीचे प्रेस में बेइन्तहा शोर और चीख-पुकार है।

उषा दौड़ती हुई बारजे पर गई, 'बबलू ! बबलू···बबलू कहाँ है ? समा ! ओ, समा ! बबलू कहाँ है ? मेरा बबलू देखा है नसीम भाई !'

उषा की हृदय-विदारक चीख सुनने की किसे ताब थी !

उषा भागती हुई नीचे गई। नीचे भीड़, धुंआ और शोर एक-दूसरे से होड़ ले रहे थे।

अब तक सारा टाइप मलबा बन चुका था। सिलिंडर मशीन की जंजीर टूटी, जमीन पर पड़ी थी। कागज गोदाम से धुंआ निकल रहा था। जगन कहीं नहीं दिखा।

वह बौखलाई हुई हाथ जोड़ती रही, 'सुनिये, फाकिर मियां ! आपने जगन, बबलू को देखा ? भाई साहब ! आपने मेरा बबलू देखा ? हमसे क्या गलती हो गई ? मेरी एक बात तो सुनिये।'

इस वक्त वह आदमियों से नहीं वहशियों से मुखातिब थी। इतनी घबराहट में भी उसे यह उम्मीद हुई शायद जगन बबलू को अपने साथ ले किसी महफूज जगह निकल गया हो, लेकिन सबसे ऊपर की छत पर चढ़कर उसकी यह उम्मीद भी ढह गई। वहां उसने देखा जगन अपनी दाईं बाजू थाम, बड़ी तकलीफ में रईस अहमद और उन जैसे कुछ बुजुर्गों को कुछ समझाने की कोशिश में लगा है।

उषा कटे पेड़-सी आकर जगन पर गिर पड़ी, 'जगन ! बबलू ! कहीं नहीं मिल रहा है···।' वह बहुत जोर से रो पड़ी।

रईस अहमद, मियां अशरफ और मिर्जा के कान खड़े हो 'हैं, बबलू कहां गया ? आपके पास नहीं था क्या ? यहीं

कहीं होगा। हम देखते हैं।'

वे तेजी से सीढ़ियां उतर गए। उन्होंने प्रेस से एक-एक कर भीड़ के सब आदमी निकाले।

वे जोगेन्दर से बोले, 'भाई साहब ! हमारा मकसद यह कतई न था। आप गलत न समझें। मौका बड़ा नाजुक था, इस-लिए बलवा हो गया। बबलू खैर से होगा। हम अभी पता करते हैं।''

तभी मुहल्ले की गूंगी लड़की शहनाज सहमी हुई आई। देर तक वह धुंए में आंखें मिचमिचाती खड़ी रही, फिर आकर उसने उषा का आंचल पकड़ लिया।

उषा ने उसे थपची में भरकर पूछा, 'शहनाज ! तूने बबलू देखा ? मेरा बबलू !'

शहनाज न सिर्फ गूंगी वरन् बहरी भी थी, फिर भी उसके ठूंठ कानों पर उषा चिल्लाती रही, 'बबलू, बबलू, मेरा बबलू !'

शहनाज जगन की तरफ देखकर हंसी।

जगन को पता था, ऐसे वह तभी हंसती थी, जब उसे दस पैसा चाहिए होता था। जगन ने कुर्ते की जेब से अठन्नी निकाल-कर उसकी हथेली पर रख दी।

शहनाज उषा का आंचल खींचती उसे गली में निकाल लाई। भीड़ अब तितर-बितर हो गई थी। मारपीट पर रोक-थाम करने के लिए पुलिस को आंसू-गैस छोड़नी पड़ी थी। भारी तादाद में पुलिस पेट्रोल कर रही थी। बलवे के बाद की खामोशी गली में छाती जा रही थी।

सेरा कोल्हन टोला पार कर शहनाज रानी मंडी में दाखिल हुई और सीधे मोती मन्जिल में घुस गई।

यह नाड़े वाले का घर था।

उषा ने सामने बड़ी 'बी' को देखा, तो उन्हीं से लिपट गई,

'बहनजी ! आपने मेरा बबलू देखा ? आप भी तो वहीं थीं।'

तब तक मझली 'बी' टाट के पर्दे वाली अपनी कोठरी से निकल आईं, 'ऐ है, इतना न घबराओ ! हमहि ले आई रहीं।'

उषा लपककर अन्दर गई। कोठरी में बबलू सुख की नींद सो रहा था।

मझली 'बी' बोलीं, 'मोमिन से लेकर दूध पिया दिए हैं। हमारी छाती में दुबककर सोया रहा ! नमाज का वक्त रहा। अबहिन ओढ़ा-बिछाकर लेटाए हैं।'

पता नहीं उषा ने उनकी बात सुनी या नहीं। वह बरसती आँखों से बबलू का मुंह, हाथ, पैर, आँखें, सिर चूम रही थी। बबलू को उसने आवेश में इतने कसकर चिपटाया कि वह जाग गया। एक क्षण वह उषा की छाती में छिपा, फिर सिर उठाकर बोला, 'अम्मा ! मारामारी हुई थी, ढिशूं-ढिशूं !'

मझली 'बी' ने झुककर बबलू का कान पकड़ा, 'तुमरी सरारत आज कहर ढाय दिहिस। बच्चू ! तुमका हम न ले आते, तो तुम्हारा भुरता बन गया होता पिट-पिट के।'

मझली 'बी' ने दंगा शुरू होते ही भीड़ के साथ उतरते समय बबलू को बुर्के में समेट अपने साथ कर लिया था। वे भागती हुई घर पहुंचीं और सबसे पहले उन्होंने बबलू को कोठरी में छिपा दिया। बबलू रोने लगा, तो उन्होंने पांच पैसे की जलेबी खरीद उसके आगे रख दी और कोठरी का दरवाजा बन्द कर दिया। वे खुद कोठरी में तभी गईं, जब शोर और भयदड़ शांत पड़ गए।

उन्होंने देखा बबलू ने सिसक-सिसककर गालों पर आंसुओं के नक्शे बना डाले हैं। उसकी निकर भी गीली हो गई थी। मझली 'बी' ने निकर उतारकर कोने में डाल दी और उसे गोद लिया। महा उत्पाती बबलू जो कभी उषा की गोद में

भी नहीं टिकता था, उनसे चिपटकर न जाने कब सो गया।

उषा बबलू को लेकर घर जाना चाहती थी; लेकिन बड़ी 'बी' ने डांट दिया, 'अबहिन एक फिसाद और करावे का है। बैठ जाओ चुप्पे से।'

उषा बोली, 'वे बड़ी फिक्र कर रहे होंगे बड़ी 'बी'! बबलू को ढूढ़ते, कहीं दूर ही न निकल जाएं।'

'तो तुम जाव, बबलू हियां रही।'

बबलू रोने लगा, 'अम्मा! अममी चलेंगे; अमको ले चलो!'

तभी जैदी साहब जगन को लेकर पहुंच गए।

उन्होंने बाहर से ही आवाज लगाई, 'मियां अहसान अली हैं?'

बड़ी 'बी', मझली 'बी' जल्दी-जल्दी अपनी कोठरियों के अन्दर हो गईं। पर्दे की आड़ से बोलीं, 'बाहर गए हैं।'

उषा लपककर बाहर आई।

जोगेन्दर की बांह बिलकुल लटक आई थी।

उषा का चेहरा देख उसने चैन की सांस ली, 'बबलू ठीक है?'

उषा ने गर्दन हिलाई, 'तुम डॉक्टर के चलो, यह क्या हालत हो गई तुम्हारी?'

तब तक बबलू ड्योढ़ी तक आ गया, 'पापा! पापा!'

जगन ने हाथ आगे फैलाने की कोशिश की। घायल बांह में दर्द बिलक उठा।

उषा हड़बड़ी में बबलू को जबरदस्ती अन्दर करने लगी।

जैदी साहब बोले, 'घबराइए नहीं। अब कुछ नहीं होगा। चलिए, आप को घर तक छोड़ आएं। डॉक्टर को खबर कर देते हैं या मैं भाई साहब के साथ अस्पताल चला जाता हूं। साहनी साहब आप मकान में ताला डाल यहीं आ जाइए।'

ताला डालने को वहां था ही क्या अब ? यह बात वहां मौजूद तीनों के मन में बड़े तीखेपन से कौंधी। लेकिन सब चुप रहे।

जैदी साहब के संरक्षण में वे एक बार फिर घर में प्रविष्ट हुए।

बड़ी मुश्किल से उषा कुर्सियों के औंधे ढेर और कागज के अम्बार पर पांव धरती ऊपर गई। स्टील की अलमारी से उसने अपना पर्स उठाया।

नीचे बड़े दरवाजे के बाहर तक स्याही के ड्रम, स्टूल, लेड वगैरह लुढ़के पड़े थे। अन्दर उनकी वर्षों की मेहनत का मलबा बना पड़ा था।

लेकिन रिक्शे में उषा और बबलू के साथ बैठते हुए अमन को लगा, जैसे यह नुकसान उस उपलब्धि को देखते हुए कुछ भी नहीं है, जो इस वक्त उसके अगल-बगल बैठी है।

□□

बी० सी० प्रेस शाहदरा, दिल्ली-११००३२

नोकप्रिय लेखकों द्वारा लिखे गए प्रशंसित उपन्यास

ा नन्हीं सी लौ	उपेन्द्रनाथ अश्क	३/-
ा चादर मैली सी	राजेन्द्रसिंह बेदी	३/-
न के किनारे	मिखाइल शोलोखोव	६/-
न्द्रशेखर	बंकिम चन्द्र	४/-
ानन्दमठ	,, ,,	५/-
तूफानी दिन	यशपाल	४/-
उवा मैं का से कहूं	आचार्य चतुरसेन	५/-
ाशीर्वाद	ऋषिकेश मुखर्जी	३/-
ड़ी चम्पा-छोटी चम्पा	डा० लक्ष्मीनारायण लाल	४/-
ताव	गुलजार	३/-
ए की लकीर	किशोर साहू	३/-
छ मोती कुछ सीप	,, ,,	४/-
ादर पुल के बच्चे	कृश्न चंदर	४/-
तारों से आगे	कृश्न चंदर	४/-
क वायलियन समंदर के किनारे	,, ,,	४/-
पने सुहाने	बलवंत सिंह	३/-
ता आसमान	,, ,,	४/-
रीफों का कटरा	मन्मथनाथ गुप्त	३/-
ाग भैरव	विमल मित्र	३/-
लाकार का प्रेम	नानक सिंह	४/-
तझड़ के बाद	ए० हमीद	४/-
ंगली कबूतर	इस्मत चुगताई	५/-
ज़ीब आदमी	,, ,,	४/-
पनी छाया	आस्कर वाइल्ड	५/-

उत्कृष्ट साहित्य सीरीज़
बहुप्रशंसित, बहुचर्चित एवं प्रतिष्ठित लेखकों के उपन्यास

धुप्पल	भगवतीचरण वर्मा	४/-
थके पांव	,, ,,	५/-
दफा चौरासी	पं० आनन्द कुमार	४/-
एक दिन और सारा जीवन	,, ,,	५/-
दर्द की लकीर	अमृत राय	४/-
कोई एक	सुधा वर्मा	४/-
बीते हुए	,, ,,	४/-
सर्पगंधा	शैलेश मटियानी	५/-
डेरेवाले	,, ,,	४/-
सवितारी	,, ,,	५/-
बावन नदियों का संगम	,, ,,	५/-
आकाश कितना अनन्त है	,, ,,	४/-
मेरी मि	मणि मधुकर	५/-
मांग	शानी	४/-
	सत्येन्द्र शरत्	४/-
	,, ,,	४/-
	चन्द्रकांता	४/-
	सुदर्शन नारंग	४/-
	करतारसिंह दुग्गल	५/-
	गंगाप्रसाद विमल	४/-

सत्तर पार के शिखर	पानू खोलिया	४/-
श्वेत पत्र	विवेकी राय	५/-
अरण्य	हिमांशु जोशी	५/-
तुम्हारे लिए	,, ,,	६/-
प्यासी नदी	से० रा० यात्री	५/-
दराजों में बन्द दस्तावेज	,, ,,	४/-
संकट	समरेश बसु	५/-
फेलूदा एण्ड कम्पनी	सत्यजित राय	५/-
दिल्ली ऊंचा सुनती है	कुसुम कुमार	४/-
कायदा माफ़ गवाह	अशोक अग्रवाल	५/-
अंगूरी	अब्दुल बिस्मिल्लाह	४/-
अमलतास	शशिप्रभा शास्त्री	५/-
वीरान रास्ते और झरना	,, ,,	४/-
नदी के मोड़ पर	दामोदर सदन	५/-
लाजो	शांता कुमार	५/-
कैदी	,, ,,	५/-
तपती दुपहरी	अभिमन्यु अनत	४/-
हड़ताल कल होगी	,, ,,	५/-
अपनी-अपनी यात्रा	कुसुम अंसल	४/-
तमाशा	रामकुमार भ्रमर	४/-
गुफा जाल	,, ,,	४/-
किस्सा तोता पढ़ाने का	हंसराज रहबर	५/-
दिशाहीन	,, ,,	५/-
पंखहीन तितली	,, ,,	४/-
झूठ की मुस्कान	,, ,,	५/-
निर्धूम	राधाकृष्ण प्रसाद	५/-
तृषिता	शांति त्रिवेदी	४/-
स्वयंवरा	,, ,,	४/-

उतरते ज्वार की सीपियां	राजेन्द्र अवस्थी	४/-
युद्धस्थल	मिथिलेश्वर	४/-
उनका फैसला	योगेश गुप्त	६/-
हिंदी की पुरस्कृत कहानियां (प्रथम)	श्रीकृष्ण	३/-
,, ,, ,, (द्वितीय)	,,	४/-
बोज्यू	सुनीता जैन	३/-
थैंक्यू मिस्टर ग्लाड	अनिल बर्वे	४/-
गीली धूप	राजेश जैन	५/-
शुक्लपक्ष	नरेन्द्रनाथ मित्र	५/-
सेतु	श्रवणकुमार गोस्वामी	४/-
मन के मीत	शांता कुमार	६/-
खुले हुए दरीचे	नफ़ीस आफ़रीदी	४/-
वासक सज्जा	आबिद सुरती	५/-
सोनभद्र की राधा व सीताराम, नमस्कार	मधुकर सिंह	६/-
चंद औरतों का शहर	शैलेश मटियानी	६/-